chapter-3

तृतीय अध्याय :

गीत-नवगीत की परिभाषा एवं विविध आयाम

तृतीय अध्याय :

प्रमुख गीतकार व्यक्तित्व एवं कृतित्व परिचयात्मक विवरण

गीत वस्तुतः नवगीत का पितामह है। क्योंकि गीत से ही इस नवगीत की पहचान और अस्मिता नियमित हुई है। वैसे तो हमारा आलोच्य वर्ण्य नवगीत के सन्दर्भ में अग्रसर होता है किन्तु नवगीत की जमीन को पहचानने के लिए आधुनिक युग के कुछ प्रमुख गीतों और गीतकारों का भी एक विहंगावलोकन कर लेना अपेक्षित है। इस सन्दर्भ में कुछ विशिष्ट गीतकारों की गीत पहचान ध्यातव्य है -

गोपालदास 'नीरज' :

प्रेम को नीरज जी महान मूल्य मानते हैं। प्रेमहीन लक्ष्य को वे मानव हृदय ही नहीं मानते। मानव से प्यार करने की प्रचंड ऊर्जा नीरज का वैशिष्ट्य है, जो उनमें संघर्षों पर मात देकर उत्कट जिजीविषा का नैरंतर्य बनाए रखा है। गहरी आस्था अड़िग विश्वास और निश्चल प्रामाणिकता ने इस ऊर्जस्वित मशाल की ऊर्जा को जाज्वलित रखा है। मानवीय जीवन के ये आस्थाशील गायक हैं, उसके मन की तहों में पैठकर वे उसकी सभी यातनाओं कुंठाओं, वेदनाओं, विवशताओं को शब्दबद्ध करते हैं। मृत्यु को जीवन की सहज नियति, विश्राम का क्षण मानकर उसे 'यति' नाम से सम्बोधित करते हैं। जीवन की समस्याओं की गहरी समझ भी उन्हें है और उनकी दृष्टि इस इलाके में सहानुभूतिशीला बनकर प्रगट होती है।

'गीत' के सम्बन्ध में नीरज कहते हैं - **''काव्य एक विधा स्वर- संकेत से व्यक्त होने वाले मन का एकांत भावाकुल उच्छवास है। उनके अनुसार गीत के प्रमुख तत्व हैं- लय, गेयता, सहजता, संक्षिप्तता, नैजतत्व (वैयक्तिकता) तथा रागात्मक बौद्धिकता''**[1]

प्रथम प्रणय की असफलता प्रिया के वियोग ने नीरज के मन में काव्यांकुरों को जन्म दिया किन्तु काव्य सृजन की निरन्तर प्रेरणा वे अपने जीवन व सामाजिक परिवेश से प्राप्त करते रहे। इस संबंध में डॉ. सुधा सक्सेना का यह दृष्टिकोण भी दर्शनीय है -

''नीरज कवि हैं उस अधूरे सपने, के उस हर बहते आंसू के, उस हर अनसुनी आवाज के, उस हर अनकही कहानी के, जो मानव के हृदय को कभी आँधी बना देती है, कभी सागर बना देती है, कभी उसे चिता की गर्म आग देती है तो कभी मलयज की शांत समीरण। इसीलिए उनके काव्य के प्रेरक बने हैं- वे हर आँसू, वह हर मुस्कान, वह हर दर्द, वह हर गीत, वह हर गम, वह हर गूंज जो मानव के सुख-दुःख दोनों की कहानी कहती है।''[2]

जीवन, समाज और वक्त की, दी हुई हर दुख की किरच टूटे सपनों की टीस अभावों की कृसक को कवि ने अपने हृदय का हार बना लिया और जब वह गीत में ढला तो जन-जन का कंठहार बन गया।

नीरज, बच्चन, अंचल जी की परम्परा में आते हैं उनकी प्रारम्भिक कृति पर बच्चनजी का यथेष्ट प्रभाव है। उनकी 'निशा-निमंत्रण' ने ही कवि को सर्जना हेतु उत्प्रेरित किया। आगे चलकर उनके काव्य में उनका स्वयं का व्यक्तित्व, उनका जीवन-दर्शन पूर्णरूपेण-आप्लावित है।

अपनी प्रथम रचना 'संघर्ष' जिसका नया संस्करण 'नदी किनारे' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें उनकी विरह व्यथित व्याकुलता को वाणी मिली है। उन्हें लगता है- वे निर्जन में खिले नीरव डाली के फूल हैं, जो कुछ कहने से पूर्व ही अगणित अरमान लिए झर गया। इससे उनमें अकेलेपन की असह्य पीड़ा बलवती होती है वे कह उठते हैं- ''कितना एकाकी मय जीवन।'' अपनी परवशता की कहानी कहते वे बड़े ही दयाद्र लगते हैं -

''अपनी कितनी परवशता है
जग से निन्दित पीड़ित होकर

जीवन में कुछ सार न पाकर
घूँट हलाहल की कटु पीकर
जब कि चाहता 'मन' जाता मर।''[3]

आगे वे कहते हैं कि - तृप्त आँसुओं की भीषण क्रांति से उनके डर को क्या कभी शांति मिल सकेगी। जीवन में कितनी अतृप्तियां हैं। मधु के अगणित प्याले पीकर, तृप्त जग फिर विषपान की इच्छा प्रदर्शित करता है। उर-अन्तर के अरमानों और छालों को छिपाकर कवि को गीले गाने की विवशता झेलनी पड़ती है-

''निर्मम कर से स्वयं कुचल कर,
और मसल कर भी तो जगती के सम्मुख
असमर्थ हमें हंसना पड़ता है।''[4]

अपने दुःख में भीगे नयनों से कवि संसृति के दुःखों को भी अनदेखा नहीं करता-

''तब मेरी पीड़ा अकुलाई
जब से निंदित और उपेक्षित
होकर अपनों से भी पीड़ित
जब मानव ने कंपित कर से हा।
अपनी ही चिता बनाई
तब मेरी पीड़ा अकुलाई।''[5]

वे रुदन को गीत मान बैठते हैं -

''मैं रोदन ही गान समझता
उर-पीड़ा के अभिशापित दल
जो नयनों में रहते प्रतिफल
आँसू के दो चार क्षार-कण आज इन्हें
वरदान समझता।''[6]

इस प्रकार इस संग्रह में विरह, प्रिय की निष्ठुरता का वर्णन और हृदय की बंकली का

रम्य चित्रण हुआ है।

उनका दूसरा गीत संग्रह ''अंतर्ध्वनि'' का नया संस्करण ''लहर पुकारे'' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसमें विवश मृत्युन्मुखता की ध्वनि तीव्रतर है-

''जीवन वहाँ खतम हो जाता
उठते गिरते
जीवन-पथ पर
चलते-चलते,
पथिक पहुँचकर
इस जीवन के चौराहे पर
क्षण भर रुककर
सुनी दृष्टि डाल सम्मुख जब
पीछे अपने नयन घुमाता
जीवन वहाँ खतम हो जाता।''[7]

प्यासी दृष्टि विषपान कर ही तृष्ट होती है। सुख के थकने पर भी वे दुःख -विहग की उपस्थिति से विलग है। अब दुःख उन्हें बैचेन नहीं करता, वह उन्हें राहत देने वाला सखा बन गया है। शून्य जग-जीवन, गगन पर उतरता तिमिर आँखों में भरता है फिर भी वह विचलित नहीं होता। सत्य के टूटने पर भी स्वप्न जग की स्थिरता से वह मन को दिलासा देता है। इस संग्रह में प्रिय के मिलन सुमधुर शेष स्मृतियां का हृदयस्पर्शी आयोजन भी है। निष्ठुर प्रिय के दर्शन की ललक भी है। निराशा पर मृत्यु आलिंगन की तृषा भी है। इस स्थिति में उसे दिशाएँ-दग्ध और गगन अंगारे बरसाता दृष्टिगत होता है। वह मृतिका का उपासक बन जाता है क्योकि वही पंचभूत की निर्माणकारी और नाशकारी शक्ति है।

तृतीय गीतसंग्रह **'विभावरी'** का नया संस्करण **''बादर बरस गया''** शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसमें प्रेमभाव को अभिव्यंजना है। सौंदर्य चेतना की दृश्यात्मक और स्पृश्यात्मक मनोहर छवियों का अंकन है अर्थात इसमें प्रेम के संयोगात्मक, मांसल चित्रों का अंकन प्रचुरता

से हुआ है।

'प्राणगीत' के बाद 'दो गीत' में जीवन गीत मुखर है। मृत्युन्मुखता के ऊपर अपराजित जीवन के वर्चस्व का यहाँ अंकन है। विश्वशांति स्थापना की 'सदिच्छा' पर लिखी गई कविता ''अब युद्ध नहीं होगा'' प्राण-गीत की प्रतिनिधि रचना है।

नीरज की प्रौढ़तम कृति है, 'दर्द दिया है' इसकी सफलता का युगान्तरकारी पक्ष ये है, कि इसमें प्रगतिवाद द्वारा विकृत शिल्प को सुन्दर परिधान मिल सका है। इसके गीत आशा और विश्वास से दैदीप्यमान है। प्रणयांकन में रुदन व नैराश्च का स्थान असीम के प्रति समर्पण भाव ने ले लिया है। इसलिए वह कह उठता है-

''इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदलकर''[8]

अपने दर्द को वह पथप्रदर्शक दीपक के रूप में परिर्वतित होने की कामना करता है-

''अँधियारा जिसमें शरमाये
उजियारा जिसको ललचाए
ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाए।''[9]

वह सबकी पीड़ा हर लेना चाहता है -

''दुनिया के घावों पर
मरहम जो न बने
उन गीतों का शोर मचाना
पाप है।''[10]

वे प्रेम करने वालों को सच्चा आदमी मानते हैं। उनके आत्मविश्वास की विजय निराशा का स्वर दबा देती है। इस संग्रह में अनेक दार्शनिक, आध्यात्मिक, शाश्वत प्रश्नों को अपनी तरह से उठाया गया है और सहज जीवन प्रणाली अपनाते उनका उत्तर अन्वेषित किया गया

है।

'नीरज की पाती' (58) समीक्ष्य काल में पत्र-गीतियों का एकमात्र संकलन है। इसमें 'कालिदास के नाम' व्यंग्य गीत अपनी मार्मिकता में अद्वितीय है। इसके प्रेमगीत भी हृदयस्पर्शी हैं। ये पत्र गीतियाँ व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तर पर लिखी गई हैं। प्रेमगीतों में नवीन चेतना का सामंजस्य है। ''माँ'' को सम्बोधित रहस्यवादी चेतना से संपृक्त गीत अपनी मौलिकता में बेजोड है। यह गीत के क्षेत्र में उनका विशिष्ट योगदान है। प्राचीन शैली का नवीनीकरण 'साधो' को सम्बोधित गीतों में उल्लेखनीय है।

जीवन की क्षणभंगुरता और पीड़ा की अतिशयता के लुभावने चित्र उनकी दी अमूल्य सौगातें है-

''छिन-छिन क्षीण हो रहा श्वास कोष जीवन का
छिन-छिन बढ़ता जाता है व्यापार मरण का
हुए जा रहे टूक-टूक सब चाँद सितारे
बने जा रहे भरु दिन-दिन सागर-सरिस रे
पर यह है आश्चर्य कि मिट्टी की आँखों में
एक बूँद आँसू का पानी अभी शेष है।''[11]

वैयक्तिकता का व्यामोह और युग आलोचना की चिंता का अन्तर्द्वन्द्व बड़ी ही सजग भाषा में चित्रित हुआ है-

''अपने दुःख का गीत लिखा मैंने जब रो कर,
सुखी जगत ने हँसकर खूब मजाक उड़ाया।''[12]

फिर भी कवि की गीतसृजन की कामना छूटती नहीं बल्कि और भी प्रबल हो उठती है-

''सौ-सौ जीवन गीत गाऊँगा
मरण की छाती पर लिख आऊँगा।''[13]

युग प्रवाह और मानवता से प्रभावित सामाजिक यथार्थवाद उनके गीतों में प्रमुख रूप से उभरा है। वे **'पीड़ा के राजकुँवर'** है। मृत्यु के चिर एहसास और निरन्तर शारीरिक रुग्णता ने उनकी पीड़ा से गहरी, पहचान करा दी है। विभिन्न गीत दुःख के झीने आवरण में आविष्टत है। दुःख-निराशा के वातावरण में भी कवि का मन आशा के दिए बुझने नहीं देता वह दुःख के तुफानों में स्वयं आँधी बनकर उन्हें रोक लेने हेतु समृद्ध हो जाता है। देशभक्ति भी उनके गीतों का एक मुख्य स्वर रहा है।

प्राकृतिक दृश्यों को भी प्रणय निवेदन में विशिष्ट भूमिका निभानी पड़ी। कही-कहीं प्रकृति का यथातथ्य वर्णन की प्राप्त होता है। कहीं इन वर्णनों में बहुत ही भाव गांभीर्य भी प्राप्त होता है। मृत्युगीत में प्रकृति के उग्ररूप के साथ कवि के अड़िग आत्मविश्वास की झाँकी दर्शनीय है-

आँधियाँ घिरी, घन मंडराये, ओले बरसे
कांटो ने दामन थाम, मुझे पथ पर रोका
अवरोध किया चट्टानों ने मेरी गति का
सौ बार गरजकर सागर ने मुझको टोका
जीवन का अंचल किन्तु नहीं छोड़ कर से
खुद पर अजेय विश्वास लिये मैं बढ़ा चला
सौ बार विफलता की आँधी से टकराया
पर कभी पराजित अश्रु न आँखों से निकला।''[14]

नीरज के गीतों का ''शिल्पपक्ष'' भी उनके गीतों सा सहजता में विशिष्ट उपलब्धियों का संवाहक है। कहीं भी चमत्कार प्रदर्शन की वृत्ति लक्षित नहीं होती। सर्वत्र सरितासी अनूठी स्वाभाविक है उन्होंने कहा भी है- मेरी भाषा के प्रति लोगों को शिकायत रही है कि न तो वह हिन्दी है और न उर्दू। उनकी शिकायत सही है और इसका कारण यह है कि मेरे काव्य का जो विषय मानव प्रेम है उसकी भाषा भी इन दोनों में से कोई नहींहै। हृदय में प्रेम सहज ही अंकुरित होता है और वह जीवन में हमें सहज ही प्राप्त होता है। जो सहज है उसके लिख सहज भाषा ही अपेक्षित है। असहज भाषा में यदि वह कहा जाएगा तो अनकहा ही रह जाएगा। प्रत्येक

समाज की एक सहज भाषा होती है। मैं जिस समाज मैं हता हूं उस समाज की सही भाषा वही है। जिसमें मैं कविता लिखता हूँ। असहज विषयों के लिए उन्होंने असहज अर्थात गांभीर्य मुक्त भाषा का उपयोग किया है। अरविन्द की कविताओं के अनुवाद, सृष्टा, जीवनगीत आदि में। इस प्रकार उन्होंने विषयानुरूप चित्रमयी, संगीतमयी, परुष दार्शनिक सहज, सांकेतिक भाषा का उपयोग किया है। लोकोकित्यों, मुहावरों से मुक्त अधिकतर अभिधा शकित का उनहोंने इस्तेमाल किया है। भाषा में प्रसाद गुण सर्वादिक है। माधुर्य से ओत-फ्रोत भावाभिव्यंजना में पूर्ण समर्थ भाषा के अभिवाहक हैं। सरल-सुबोध शब्द संयोजन में वे अनुपम लाक्षणिकता ओतप्रोत कर देते हैं। प्रभावशाली प्रतीकों का वे सफल प्रयोग करते हैं लो, स्याही, काजल आदि प्रतीक भी अपनी विशिष्टता में अद्वतीय है। गहराई में ले जाने हेतु वे भाषा में अभिनव बिंबयोजना का सृजन करते है। पारम्परिक अळंकारों का उन्होंने नई रीति से प्रयोग किया है। बिम्ब योजना की दृष्टि से 'प्राणगीत' निर्विवाद प्रशंसनीय है, कविताएँ छन्दानुकूल लघुदीर्घ है। छन्द योजना भाषा के अनुरूप तथा शास्त्रीय दृष्टि से पूर्णतया निर्दोष है। उसमें ताल, लय, गीत का मात्राक्रम को विकृत किए बगैर पूर्णतया सही निर्वाह हुआ है। छन्द वैविध्य के दर्शन होते हैं। छन्द तुकान्त अतुकान्त दोनों प्रकार के पाये जाते हैं। कुछ स्थलों पर विभिन्न छन्दों का अद्भूत समन्वय मनोरंजक है। अंग्रेजी, उर्दू, तत्सम सभी भाषाओं के शब्दों का सटीक प्रयोग किया गया है। इस प्रकार नीरज का शिल्पपक्ष भी सहजता का अनुयायी है।

इस सत्य से किसी को इंकार नहीं है कि बच्चन के उपरान्त 'नीरज' को ही सर्वाधिक मंचीय लोकप्रियता मिली। फिलम जगत में भी उन्होंने सुन्दर साहित्यिक व लोकप्रिय गीतों की श्रृंखला आगे बढ़ाई, उनमें से-

'कारवाँ गुजर गया, गुबार देखते रहे'

गीत अपने संपूर्ण भाव व शिल्प बोध में अतुलनीय है। किसी भी वाद का अनुकरण न करते हुए उनके काव्य में अनेक धाराओं का समन्वय मिलता है। उनका दार्शनिक पक्ष प्रबल है। गीतों में सहज लय और भावों का विस्मयकारी गुम्फन अपनी सानी नहीं रखता। हिन्दी गीत सृष्टि नीरज के प्रतिभा सम्पनन काव्य-संयोजन से फली-फूली है। अपनी वाग्विदग्धता से उनके गीतों के प्रति हिन्दी गीतसृष्टि ऋणी रहेगी।

केदारनाथ सिंह :

केदारनाथ सिंह तीसरे सप्तक के एक कवि हैं। सप्तक में भी उनकी रचनाएँ गीतोन्मुखी हैं तथा प्रकाशित काव्य कृति 'अभी बिल्कुल अभी' की कविताएँ प्रणय, संघर्ष और व्यंजना की त्रिआयामी धारा में मुख्य रूपे गीतमयी है।

केदारनाथ जी गीत के स्वरूप पर पुनर्विचार करना आवश्यक मानते हुए कहते हैं- **''गीत और गीति में भेद अनावश्यक है।''**[15] उनके अनुसार गीत कविता का एक अत्यन्त निजी स्वर है जिसमें कवि सारे बाह्य अवरोधों और उसकी असंख्य तहों को भेदकर सीधे अपने आपसे बात करता है। **''सब कुछ कह लेने के बाद कवि ने मन में जो एक 'भाषातीत गूँज' बच जाती है, गीत की शुरुआत ठीक वहीं से होती है, और उसकी सफलता इसी में है कि उस 'भाषातीत गूँज' को भाषा के सम्पर्क से कम से कम विकृत या दूषित किया जाए।''**[16]

उनका कहना है-**''आज का गीत हमारे आसपास की चिर-परिचित जिन्दगी की ऊब और निरर्थकता के भीतर छिपी हुई ताजगी की और इशारे करे, यदि वह ताजगी कहीं हो तो।''**[17]

उन्होंने अपने गीतों में इस ताजगी को स्वीकारा है और उसे गीतों का जामा पहनाया है। उनके गीतों की ताजगी हमारा मन मोह लेती है, साथ ही इसमें आंचलिकता की झलक भी देखने को मिलती है-

''रात पिया, पिछवारे पहरू ठनका किया
कंप-कँप कर जला दिया
बुझ-बुझ कर यह जिया
मेरा अंग-अंग जैसे
पछुए ने छू दिया
बड़ी रात गए कहीं पंडुक पिहका किया
आँखड़िया पगली की
नींद हुई चोर की

पलकों तक आ-आकर
बाढ़ रुकी लोर की,
रह-रह कर खिड़की का पलला ठढका किया।''[18]

प्राकृतिक वर्णन भी उनके गीतों में ताजगी लिए हुए है-

''झरने लगे नीम के पत्ते बढ़ने लगी उदासी मन की
दिन के इस सुनसान पहर में रुक-सी गई
प्रगति जीवन की
साँस रोक कर खड़े हो गए
लुटे-लुटे से शीशम उन्मन
चिलबिल की नंगी बाहों में
मरने लगा एक खोयापन।''[19]

केदारनाथ जी गीतों में शिल्पगत बन्धनों को अस्वीकृत करते हुए गीतों में टेक, बिम्ब आदि अभिव्यंजना के माध्यमों की अनिवार्य नहीं समझते। उनके गीतों की संख्या कम है। इनके गीतों का प्रमुख स्वर भावभूमि प्रणय प्रधान है। लोक-जीवनानुभूतियों ने उनके गीत कलेवर का शृंगार किया है। वैयक्तिक प्रणय के विप्रलंभ पक्ष का अंकन उन्होंने अधिकत्तर किया है। जीवन की संघर्षमयी स्थितियों का चित्रांकन इनके गीतों में अत्यन्त कम है, इसलिए उन्होंने काव्य के मार्ग को चुना। प्रणय के विरह का वर्णन भी संतुलित है उसमें न ही दार्शनिक गहनता है न ही अश्रुओं की बौछार। उनके गीतों का गला रूंध गया है-उसके प्यार की आवाज, पेड़ों, घाटियों और लहरों पर बिखर गई है। विदा वेला में प्रिया के आँचल में 'टुटता मन' तथा 'फूल का काँपता क्षण' बाँधने की मार्मिक अभिलाषा दृष्टव्य है-

''रुको आँचल में तुम्हारे
यह समीरन बाँध दूँ यह टूटता प्रन बाँध दूँ
एक जो इन उँगलियों में कहीं उलझा रह गया है
फूल सा वह काँपता क्षण बाँध दूँ।''[20]

जाती हुई प्रिया को 'निमंत्रण का बौर' प्रतीक रूप में देना भी वह नहीं भूलता-

''पर सुनो तो
खुले जूड़े में तुम्हारे
बौर पहला बाँध दूँ
हाँ, यह निमंत्रण बाँध दूँ।''[21]

बसंत आगमन से शरीर का रेशा-रेशा पुलकित हो उठता है-

''यह कैसा वातास
कि मन को नयन-नयन कर दिया
गीत को चुप्पी से भर दिया
भर दिया-यह कैसा वातास।''[22]

सामाजिक जीवन का वर्णन भी उनके गीतों में अछूता नहीं रहा। खेतिहर भाई से राहत के स्वरों में वे अपनी शुभाकांक्षा कहते हैं-

''धान उगेंगे कि प्रान उगेगें
उगेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरुर
धान तुलेंगे कि प्रान तुलेंगे
तुलेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर।''[23]

आज के जीवन की विसंगतियाँ कवि को अग्नि किरीटी मस्तक सी लगती है-

''सब चेहरों पर सन्नाटा
हर दिल में गड़ता काँटा
हर घर में गीला आटा
यह क्यों होता है?

मेरा पथराया कंधा

जो है सदियों से अंधा

जो खोज चुका हर धंधा

क्यों चुप रहता है?''

यह अग्नि करीटी मस्तक

जो है मेरे कंधो पर

यह जिंदा भारी पत्थर

इसका क्या होगा?[24]

''जमीन पक रही है'' कविता संग्रह में ''फर्क नहीं पड़ता'' कवि का अनुपम काव्य है। प्रारम्भ की पंक्तियाँ ही मन की जबरदस्त पकड़ ले लेती हैं। कवि जीवन की बाधाओं पर अपनी दृष्टि का फेरा लगाता है-

''लक्ष्यहीन मोड़ों पर

खिंचे हुए रोली के हलके इशारे

और तैरती हवाओं में

बहुत-से अजन्मे पुल

जिनसे होकर मुझको

इस छोटे जीवन के

अनगिनती

अनाघ्रात अर्थों तक

जाना है।''[25]

एक पारिवारिक प्रश्न कवि को परेशान करता है कि माता-पिता के विशाल व्यक्तित्व के बीच क्या कभी उसकी अलग पहचान बन पाएगी? या लाचारी उसके कदम बाँधे खड़ी रहेगी-

''छोटे से आँगन में / माँ ने लगाए हैं

तुलसी के बिरवे दो

पिता ने उगाया है/बरगद छतनार
मैं अपना नन्हा गुलाब/कहाँ रोप दूँ।
मुट्ठी में प्रश्न किए / दौड़ रहा हूँ बन-बन
पर्वत-पर्वत/ रेती-रेती...। लाचार।''[26]

समय रूपी 'अनागत' को लक्ष्य बना कर लिखी गई उनकी कविता मील का पत्थर है-

''इस अनागत को करें क्या
जो कि अक्सर
बिना सोचे, बिना जाने
सड़क पर चलते अचानक दीख जाता है
किताबों में घूमता है
रात की वीरान गलियों-बीच गाता है
राह हे हर मोड़ से होकर गुजर जाता
दिन ढले-
सूने घरों में लौट आता है,
इस अनागत को करे क्या,
जो न आता है, न जाता है
फूल जैसे अँधेरे में
दूर से ही चीखता हो
इस तरह वह दरपनों में
कौंध जाता है
हाथ उसके
हाथ में आकर बिछल जाते
स्पर्श उसका
धमनियों का रौद जाता है।''[27]

कवि के अनुसार जो वस्तु हमारी पकड़ के बाहर होती है। वही हमें आकर्षित करती

है। हम उसी को प्यार करते हैं -

"एक रेखा

जो कि बँधती ही नहीं

कभी तुममें

कभी मुझमें कौंध जाती है

हम उसी को प्यार करते हैं।"[28]

केदार जी के गीतों का शिल्पपक्ष प्रौढ है। उनकी भाषा भावानुसार परिवर्तनशील रही है। संप्रेषणीयता के वर्धन हेतु उन्होंने उर्दू, देशज आदि शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। सहजता उनके गीतों की विशिष्टता है।

इन्होंने मुक्त, समतुकांत, परम्परागत, सामाजिक, लोकगीत, भावित सभी छंदों का प्रयोग कर गीतों में गेयता बनाए रखी है।

इनके गीतों में प्रतीक-समष्टि जीवन, यौनविषयक, तृप्ति, अतृप्तियों के प्रागट्य हेतु प्रयोग किए गए हैं। इनके गीतों में बिंबात्मकता भी अनायास रूप में आ गई है। विथा- गीत व धानों का गीत में बिंब बड़े ही प्रभावशाली और भावाभिव्यंजक बन पड़े हैं-

'झीलों के पानी खजूर हिलेगे

खेतों के पानी बबूल

पछुआ के हाथों में शाखें हिलेंगी

पुरवा के हाथों में फूल'

- तीसरा सप्तक

इस प्रकार उनके गीतों की संख्या अल्प होने के बावजूद गीतों ने उन्हें शीर्ष स्थान प्रदान किया है। उनके गीत बड़े ही नपे-तुले, बाछाडंबरहीन, स्वाभाविकता से ओत-प्रोत और नावीनता से सराबोर होने के कारण अपनी अलग पहचान बनाते हैं। उनके गीतों की ताजगी, प्राणमयता व लोकोन्मुखी चेतना बेजोड़ है। उन्होंने नवगीत के प्रयांग की राह दिखाई है। गीतिकाव्यधारा प्रयोगधर्मिता के क्षेत्र में उनकी ऋणी रहेगी। उनकी प्रयांगशील वृत्ति गीतिकाव्य

की गौरव निधि बन गई है।

4. चन्द्रसेन 'विराट' :

चन्द्रसेन विराट ने दुष्यंतकुमार और बलवीरसिंह रंग की तरह गीत विधा में गजल और शेर को नए तरीके से प्रस्थापित किया। इनके गीतों में अनूठापन, सहजता, मौलिकता और माधुर्य की चतुरंगी आभा है।

छन्दमय गीत विराट के जीवन की आवश्यकता बन कर आए हैं। वे कहते हैं- आदमी गाए न गाए, मगर दर्द कैसे चुप रह सकता है। **''पीड़ा ने उनके अहम को पिघला कर गान कर दिया है और उनके भीतर के शैतान को भी इंसान बना दिया है। अब उन्हें वीराना भी मैंले जैसा लगता है। उन्हें लगता है विरह के कारण ही उनका कविमन जिन्दा है। जब उम्र बोझ बनने लगी थी और सांसे कर्ज बन रही थीं। तब कवि को प्रिया के रूप में जीने का बहाना मिल गया... किन्तु उसका साथ क्या छूटा मुश्किलें व्यवधान बनकर मार्ग अवरुद्ध करने लगीं। स्मृति दुःखों का सामान बन गई। मन की पहचान पर कवि की सांसे गीत लूटाती रही हैं। कवि को डर है कि अघरों की प्यास तृप्त हो जाने पर शायद गीतों का शहर उजड़ जाएगा कवि जानता है कि रूप के गर्व ने प्रिया की चूनर गंदी कर दी है और आँसूओं ने कवि की चादर उजली बना दी है। कवि चाहते हैं कि देह शव बनने से पहले प्रिया अघर लगाए किन्तु व जानते है कि जीवन का तकाजा बहाना बनाने से भी रुक न सकेगा। मृत्यु अपना कार्य कर जाएगी। प्रिया की बाँहो की दीवार भी उन्हें रोक न पाएगी''**[29] यह विराटजी के गीतों का अप्रतिम प्रणयपक्ष है।

विराटजी के गीतों में सुख-दुःख के स्वप्न जिस तरह तैरते है। उसी तरह जीवन की यथार्थ स्थितियाँ भी करवटे लेती हैं। उनके गीतों में एक प्राणवंत सचाई के दर्शन होते हैं। **''विराट की अधिकांश गीत संपदा काल-सापेक्ष होते हुए भी कालातीत है क्योंकि उनमें मानव मन के शाश्वत अनुभवों का अनुगायन हुआ है। महानगर में जीनेवाले का अनुगायन हुआ है। महानगर में जीने वाले नागरिक के लिए आज की इस औद्योगिकता में जब मनुष्य रागात्मक कशिश के लिए तड़पने रहने को आकुल है। ऐसे मैं चन्द्रसेन विराट के गीत अपनी**

सहज एवं सजग रागात्मकता को लेकर आते हैं और सही संदर्भ पर संवेदना कालेप देकर उसे काफी हद तक सकून देने की कोशिश करते हैं।''[30]

उनके गीतों में विषय-वैविध्य है। महानगर की भूमिका आज क्या है? उनके शब्दों में उत्तर सुनिए -

''नित घोल रहा नस-नस में मधुर जहर
यूँ मनु को मार रहा है महानगर
इन ओढ़े हुए मुखौटों पर संशय
यह महज औपचारिकता, यह अभिनय
जीविका हेतु यांत्रिकी व्यस्तथाएँ
अपराध पतन या नैतिक हत्यायें''[31]

राजनेताओं की सत्तालोलुप वृत्ति उनके दृष्टि स्पर्श से बच नहीं सकी है -

अरमान बसे है कुर्सी में
मन-प्राण बसेहै कुर्सी में
सब धर्म-कर्म कुर्सी, उनके
भगवान बसे है कुर्सी में
वे कुर्सी छोड़ नहीं सकते लाचारों को आवाज न दी।''[32]

समय और परिस्थितियों के भँवर मनुष्य को मनुष्य से दूर ले जा रहे हैं -

''आदमी-आदमी इस कदर अजनबी
भीड़ होते हुए एक वीरान है
पास होते हुए भी बहुत फासले
कह कहे हैं मगर एक सुनसान है।''[33]

आज जीवन दूषित हो गया है। दिन दुर्व्यसनी और रातें बंध्या हो गई हैं-

''यहाँ अभावों के ऊजगर हैं
कुंठित हृदयों के खंडहर हैं

कत्लगाह तक ही जाती है,
सपनों की बारात आजकल।''[34]

बीमार सदी कलुषित सभ्यता को जन्म दे रही है इससे राते हिमानी और दिन कुहरे भरा लगता है -

''संकट है जिन अस्तित्वों का
प्रश्न विभाजित व्यक्तित्वों का
धुआँ फेंकती सतत सभ्यता
जीवन-मंद-मंद जहरीला।''[35]

सम्बन्ध सेतुओं में संचेतना पक्षाघात से पीड़ित हो गई है। इसलिए अफना घर पराया लगने लगता है-

''नागफनी सी उग आई है वर्जना
आहत पंखो बिन्धी पड़ी है सर्जना
वातायन से झाँक उटा संदेह है
हुआ अपरिचित निज को अपना गेह है।''[36]

उपर्युक्त उदाहरण यह बात स्पष्ट कर देते हैं कि विराट जी के गीत आधुनिक भावबोध से संपृक्त है। वर्तमान जीवन की वास्तविकताओं का उन्होंने अनुभूतियों के सूक्ष्म तन्तुओं से साक्षात्कार किया है और उसकी सहज भावाभिव्यक्ति की है।

गीतों में वे भावानुगामिनी भाषा के पुरस्कर्ता है। सुन्दर बिम्ब योजना की कहीं-कहीं दुर्शित होती है। प्राकृतिक प्रतीकों का खुलकर प्रयोग वे करते हैं। लयात्मकता से आपूरित पंक्तियाँ प्रवाहपूर्ण हैं। एक स्वाभाविकता से उनके गीत मंडित रहते हैं।

विराट जी ने अनेक गीतसंग्रह लिखे हैं। 'निर्वसना चाँदनी' शीर्षक से एक गजल संग्रह भी लिखा है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी उनके गीत प्रकाशित होते रहे हैं। ''दर्द-कैसे चुप रहे'' उनका मार्मिक गीत सग्रह है।

वे गीतों में सामाजिक बोध के साथ सांस्कृतिक परम्पराओं के रक्षण को महत्वपूर्ण मानते हैं। समाज और समय के समानान्तर उनकी गीत तरिणि सवित रही है।

नई कविता की दुरूहता और सिर्फ महानगरीय चित्रण से उन्हें शिकायत है। गीतों में आँचलिक व नगरीय भावबोध के मिश्रित रूप के कारण वे गीतों को प्राधान्य देते हैं। रागात्मकता के साथ हरचीज को विशिष्ट नजरिए से देखने की कोशिश उन्हें महत्वपूर्ण सिद्ध करती है। उनके गीतों की चौखट में विविध-आयामी जीवन, कलागत ताजगी केसात, सही परिवेश में चित्रित हुआ है। आधुनिक संवेग ने उनके गीतों में जमीन पाई है-

''भीतर विद्रूप हुआ मन, पर मुख पर
सुन्दर-सा एक मुखौटा जड़ा रहा
चिटखें शीशों में विकृत बिम्बों-सा
व्यक्तित्व अधोमुख होकर पड़ा रहा
मन निज का शोक मना कर भी रोया
पर आँसू दृग में बन-बन गए कनी।''[37]

विराट की 'मुक्तिकाएँ' पाठक के लिए न केवल गुनगुनाने की विवशता बन जाती है बल्कि वह इन पर सोचने-समझने के लिए एक जमीन भी तैयार करने पर विवश हो जाता है। 'मुक्तिका' के नाम से गजलों का यह पुनसंस्कार विस्तृत विश्लेषण की मांग करता है, चूंकि इनमें विशेषकर गीतकार विराटकी पहचान सुरक्षित है। बनी-बनाई लीक को तोड़ना यह अपने आप में जोखिम है और तोड़कर उसे अपने नजरिए से स्थापित करना बेहद मुश्किल और इस गीतकार बनाम शायर ने ये दोनों काम बड़ी बुलंदी से किए हैं।

इस प्रकार विराट मौलिक अभिव्यंजना पद्धतियों के संस्थापन और निर्वाहन के लिए हमेशा याद किए जाने चाहिए।

देवराज दिनेश :

'देवराज दिनेश' जी कवि सम्मेलनों तथा आकाशवाणी के माध्यम से बहुश्रुत हुए तथा लोगोंकी पसन्द पर चढ़े। वैविध्यपूर्ण साहित्य के स्वयिता होने के बावजूद वे प्रमुख रूप से

गीतकार हैं।

प्रणय के मधुरतम पलों को उन्होंने शब्दस्वरों की लड़ियों में बाँधा है। वे स्वयं कहते हैं - 'पुखैया के नूपूर' मानस की रसवंती वीणा पर गाए गए भावनात्मक, रागात्मक प्रणय गीतों और कविताओं का संग्रह हैं। उन्होंने वेदना और व्यग्रता के क्षणों को काव्य सृजन का प्रेरक माना है। ये क्षण प्रणय से मिले हुए दानस्वरूप हैं। ''जड़ चेतन सभी इस प्रणय की डोर में बँधे हैं। सृष्टि के आदि से यह भाव जड चेतन पर छाया रहा है और अन्त तक छाया रहेगा। चिर सत्य, शाश्वत इस प्रणय राग की अवहेंलना कर ही कौन सकता है।''[39] क्योंकि...

प्यार की भाषा बहुत मीठी, बहुत गहरी
प्यार के हर शब्द का विश्वास है प्रहरी।।[40]

प्रिया को अपने आगमन का मधुर संकेत देता कवि कहता है -

''तुम सलोने नीड़ में बैठी हुई चुपचाप
सुन रही थीं, काल्पनिक प्रिय की सुखद पदचाप
साधना में लीन-मादक भावना में मौन
आ किसी ने खटखटाया, प्यार का संसार
एक दिन प्रिय पाहुना आया तुम्हारे द्वार।''[41]

सावन का आना कवि मन को अभिलाषाओं से भर देता है -

''चिर युगों के बाद फिर उर में उठी धड़कन
लोचनों में भी लगे हैं खेलने जलकण
आ गया सावन रंगीली चाह सा प्यारा।''[42]

वे कला में हार्दिकता के सम्बन्ध का पक्ष लेते हैं-

''जहाँ नही है हृदय, करेगी वहां कला क्या
स्मिति रेखा के बिना जिएगा रूप भला क्या।''[43]

परिस्थितिवश बिछुड़े मन के मीत जब फिर अनायास पथ पर मिल गए तो मधूर संगीत

में नहा गए -

''दृग मिले, पगु रुक गए, सिहरे हृदय-जलजात
प्रथम कुछ संकोच, फिर कुछ झिझक, फिर कुछ बात
बात से पहले, अधर पर आ गई मुस्कान
अर्थ जिसका यह, अभी तक जी रही है प्रीत
हो उठी उर-वीण झंकृत ले मधुर संगीत।''[44]

विरह की ज्वालाओं में तप्त हृदय प्रिय के निर्मोही पन को देखकर कसकता है। मान में भरा वह कह उठता है-

''तुम आशाओं के फूल खिला लो अपने
मेरे उपवन में पतझड़ ही रहने दो
जग की निर्ममता मुझको ही सहने दो।''[45]

'जीवन और जवानी' के संघर्षों में दिनेश आस्था और विश्वास के समर्थक रहे हैं। वे जलन के बहुत पास यौवन के इतिहास हैं। जलन और यौवन के बीच सुलग-सुलग कर तथा सुख-दुःख और हर्ष-विषाद के अन्तर्द्वन्द्व आत्मा में पहन-पहन कर वे कभी अपनी निराश्रित विवशता पर रो लेते हैं, कभी दुनिया के प्रति आक्रोश व्यक्त कर लेते हैं।[46]

अपने गीत संग्रह 'गंध और पराग' के संकेत में लिखते हैं यह मेरे भोगे हुए यर्थाथ के गीत हैं, जीवन का हर पहलू इनमें मुखरित हुआ है। सूनापन और लोगों के लिए निराशा का द्योत्तक हो सकता है किन्तु मेरे लिए नहीं, मेरा सूनापन मुझे जिन्दगी बख्शता है, रचनाएँ देता है अपने आत्म-विश्लेषण की ओर अग्रसर करता है। अनेक मनःस्थितियों के गीत इस संग्रह में हैं। जहां जीवन की सहजता इन गीतों में है वहीं महानगर द्वारा प्राप्त पीड़ा भी कई जगह मुखारित हुई है। महानगर आश्वासनों से भरा हुआ नगर है। मात्र आश्वासन मिलते हैं और कुछ नहीं। उदाहरणार्थ :-

घर सोने के लिए नीड़ है और नहीं कुछ
अजगर सी कुण्डली डाल कस रही विवशता

कुण्ठाओं का वृष्चिक कदम-कदम पर डसता
जीवन है, जीवन में गति, लय, गान नहीं है
भरी भीड़ में अपनों की पहचान नहीं है
चौराहे से घर तक आया है कोलाहल
घर कर विविध रूप लहराया है कोलाहल
ऐसे में कवि किसको अपना कह टेरे
औ मन मेरे।''[47]

तथा -

''कंचन मृग बनकर भरमाते हैं
जीवन को ये झूठे आश्वासन
जबसे हमने सीखा है चलना
तब से छलती आई है छलना
ऐसे-एसे स्वप्न दिखाते हैं
हिमगिरि से सागर तक जाते हैं
सुलझते-सुलजाते उलझ रहे
इनके नागपाश वाले बन्धन।''[48]

सूखे अघरों पर अर्थहीन मुस्कानें उसे झूमती दिखाई देती है। हर कदम पर गहरी खाइयाँ हैं। भीतर से रोते ऊपर से गाते लोगों के छलनामय संसार में कवि कोलाहल के बीच सूनापन महसूस करता है।[49]

इस प्रकार गीतों में उनका व्यक्तित्व झलकता है। अपने जीवन की घटनाओं और मनोदशाओं का वर्णन उन्होंने गीतों में प्रचुरता से किया है। जीवन और विश्व के सनातन मूल्यों की अनुभूति उन्हें है। वे बाछ को अन्तर की चमक से सज्ञित कर गीतों के रूप में ढालते हैं। यौवन उन्हें रसदान करता है तो जीवन को वे गये बना देते हैं। उनका हृदय प्रणय में मिलन की अपेक्षा विरह ज्वालाओं से अधिक आवष्टित है। यही करुणा उनकी आधप्रेरक है।

अंतर्द्वन्द्वों की द्विविधा में चिंतन के सहज स्फुलिंग उनके काव्य को गरिमामय बनाते हैं। प्रकृति के आलम्बन रुप का वर्णन न कर दे उसे भावाभिव्यक्ति का सहायक बनाते हैं-उनके अनुसार - यह अचराचर प्रकृति प्रणयी हृदय के लिए सदैव ही उद्दीपन का कार्य करती रहेगी और सच्चा अनुभूति भरा प्रणयी मन, निश्चित ही प्रणय की उन वीथियों में विचरण करने लग जाता है जहां प्रिय और प्रकृति उसके लिए एकाकार ही जाते हैं (पुरवैया के नुपूर, संकेत में) प्रकृति के प्रति अपने आकर्षण भाव की स्वीकृति उन्होंने ''जीवन और जवानी'' के संकेत में भी दी है। उन्होंने प्रकृति को सख्य भाव से स्वीकारा है। उसका मानवीकरण भी किया है। प्रकृति उनके मन में आशा और विश्वास की ज्योति जगाती है -

जड़ प्रकृति जिसे सारी दुनिया बतलाती है
सचमुच प्रिय उसकी कितनी विस्तृत छाती है।[50]

उनकी ओजस्वी, राष्ट्रीय आस्थामयी भावनाएँ 'भारत माँ की लोरी' में अभिव्यक्त हुई हैं। उनके राष्ट्रप्रेम की प्रतीक, चीनी आक्रमण के विरुद्ध प्रतिनिधि रचना इसी संग्रह में है। प्रेमचंद, निराला आदि, महापुरुषों के प्रति आदराजलियां प्रगति की प्रेरणा स्त्रोत है।

भाषा सहज और व्यावहारिक है। उनके गीतों में बिखराव बहुत है। लोकभाषा के शब्द का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है। भाषा विषयानुरुप है। प्रणय वर्णन में सरस, उपदेश, संदेश में गंभीर तथा राष्ट्रप्रेम के समय तेजस्वी। उन्होंने व्यंजना और लक्षणा शब्द शक्ति की अपेक्षा अभिधा का प्रयोग अधिक किया है। प्रतीक भी सीधे हैं। विविध तरह के छन्दों का उपयोग उन्होंने किया है। प्रभावान्विति की दृष्टि से छोटे छन्द प्रभावी है। दीपक नदियाँ जैसे बहु प्रचलित प्रतीक उनके काव्य में मिलते हैं। सांद्रबिंबयोजना में उनकी सानी नहीं। छोटे मार्मिक चित्र भी मनोहारी हैं। कहीं-कहीं बिंबो की लड़ियाँ निर्झर सी फूट पडती हैं। एक बिंब देखिए-

''बिना बात बिक गई वहां पर
सखि, अनमोल जवानी
दो नयनों ने बाँध लिया
अल्हड झरना तूफानी''[51]

दिनेशजी के गीतों का भावपक्ष कलापक्ष की अपेक्षा अधिक सबल है। द्विवेदीजी के कथनानुसार **"दिनेश के गीतों का शिल्प अपेक्षाकृत कम परिष्कृत तथा कम सुघढ है। उनके गीत कथोपकथन, काव्यात्मकता तथा सम्बोधन-उद्‌बोधन से लदे रहेत हैं, जो विषय को स्पष्ट तथा बोध गम्य भले ही करते हों, अनुभूति का घनत्व उनमें नहीं होता। सम्बोधनों में प्रिय की भरमार अरुचिकर लगती है। गीत अनावश्यक रुप से लम्बे ही रहते हैं यह कवि सम्मेलनों में अधिक देर तक पाठ करते रहने की प्रवृत्ति का कुफल है।"**[52]

इन कमजोरियों के बावजूद उनकी गीतात्मक महत्ता को नजर अंदाज नहीं किया। जा सकता उन्होंने अच्छे गीत काव्य जनत को दिये हैं।

शिवकुमार श्रीवास्तव

शिवकुमार जी ने गीत कम ही लिखे हैं। इनके कविता संग्रहों में सुन्दर गीत प्राप्त होते हैं। प्रमुख काव्य-संग्रह हैं- "शहर सहमा हुआ" "समय कागज पर" तथा "तुम ऋचा हो।"[53]

'शहर सहमा हुआ' के गीतों में तीव्र 'सामाजिक चेतना' और आधुनिक बोध है। वर्तमान जीवन की तल्ख स्थितियों का यथार्थ अंकन इनके गीतों में हुआ है। बस्तियाँ बेहद अभावों में गमज़दा उखरी हुई है। चौराहे सिसक रहे गलियाँ तनाव भरी हैं गाँव-कस्बे मर्सिये लिखने लगे हैं। इन्साफ मुजरिमों के हाथ में पहुँच गया है। निठल्लों के बीच साजिशों के दौर चल रहे हैं। दहशत के कारण शहर सहमा हुआ है। मुस्कुराना, गुनगुनाना सब बन्द हो गया है। रंगरेज माहौल की स्याह रंग में डूबाता जा रहा है। सिफारिश और राजनेताओं से रिश्तेदारी न होने के कारण योग्य आदमी भी बेकार बैठा कुण्ठित होता रहता है।

'समय कागज पर' के गीतों में प्रणय का स्वर प्रमुख है। कवि को लगता है- **यदि तुम मेरे जीवन में न होते, तो रूप-रस-गंध, मधुर, छन्द, और तरल सम्बन्ध न होते। तुम्हारी एक मुस्कान का अर्थ पूरा वसंत होता है। तुम्हारे स्वर इन्द्रधनुष के प्रतिद्वंद्वी हैं। उसके हृदयरुपी पथ पर से प्रिया का रथ धूल उड़ाता, लकीरें छोड़कर चला गया है। पुष्पों की सुगन्ध उसके मन में बसी है। उसकी अतृप्त प्यास भटकती रहती है। उसकी यह यातना मयूरपंखी है। प्रिया के स्पर्श से प्रकृति में चैतन्य छा गया है यह कवि की अनुभूति है। देह-**

ब्रज में सुरभि का ज्वार और संगीत का नर्तन उमड़ा पड़ा है।[54]

पारिवारिक संदर्भ भी उनके गीतों में सजीवता से चित्रित हुऐ हैं। संवेदनाओं के गहरे रंग इनके गीतों की बाँहे पकड़ कागज पर उतरते हैं।

''तुम ऋचा हो'' के गीत विविधता लिए हैं। प्रिया के प्रति पूज्य विस्मय भाव भी उसमें है तो उखडी मनःस्थिति और अलसाए भावों की कुहरिलों स्थिति का चित्रण भी। जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण भी है। इनके गीतों में सामाजिक तथा वैयक्तिक चेतना का मिश्रण झलकता है।

''कविताओं में कई मंजिलों पर संवेगात्मक भावातरिक परिलक्षित होता है। परन्तु हर रचना अपनी परिणति के उत्कर्ष में चैतन्य आत्मविश्वास में उत्सर्जित है। इनकी भाषा और शिल्प भी इतनी सहजता से सामान्य है कि अपनी सामान्यता में असामान्य लगते हैं। साथ ही बिंब विधान अपने रंगों की तेजस्विता पैनपन और आयामों के कोणों के कारम सामान्य से अधिक मुखर हैं। भावोन्मेष के छायान्तरण इन कविताओं को महरे उतार और सीधे चढ़ाव प्रदान करते हैं।''[55]

गीत लेखन के समय कवि को हिसाब-किताब की सुघ हो आती है। पहले तो वह कल्पनाओं के मेघों संग डूबता उतरता है फिर यर्थाथ की कड़ी भूमि पर उतर आता है-

''अस्तमान संध्या की किरणें
मेरा आँगन लीप गई थीं
अभी लजाती हुई आस्था
रख दीवट पर दीप गई थीं
जाने कैसे जोर मिलेगा-
जीर्ण-शीर्ण खस्ता खातों का
मुझको क्या क्या लेना देना
इन साँझों का उन प्रांतों का
पहले कर्ज चुका दूं गति देने वाले
कतीखे कांटों का

फिर जो कुछ भी रह जायेगा

वह सब कुछ होगा गुलाब का

पुण्यों से पहले करना है

लेखा जोखा अपराधों का।''[56]

मुग्धा नदी का सुन्दर चित्र दर्शनीय है -

पारदर्शी

तल–स्पर्शी

पुण्य तोया

शैल तनया

विरह दुग्धा

कृश कलेवर

नदी मुग्धा

नए तेवर

तपस्विनी के

दंपि पूजन के लिए जो

खोजती हैं फूल फिर जासौन का।''[57]

श्री वास्तवजी के बिंब भी बहुत अर्थगर्भी और सजीव हैं। प्रकृति के उपादानों में मानवीय क्रियाओं का संगुफन बिंब को प्राणवान बना देता है-

''थके सूरज की किरण

सुस्ता रही है फुनगियों पर

मुंडेरों पर कंगूरो पर।''[58]

तथा -

''उलझे हुए केश / लेटी है

आज साँझ / बीमार बीमार ॥''[59]

पौराणिक घटना पर आधारित प्रथीक देखिए -

''पैताने बैठा है दुख-पार्थ
और सिरहाने डटा है सुख स्वार्थ।''[60]

उनके उपमान भी बड़े सार्थक हैं -

''अजाने चाट जाए जिस तरह गिरुआ
किशोरी लहलहाती गीत की फसलें।''[61]

अनेक लोकभाषा के शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है, जिज्ञी, बासन, बिन्ना, गुरसी इत्यादि। इससे भाषा में स्वाभाविक प्रवाह की वृद्धि हुई है।

''सुरभि / पागल किशोरी
प्रेम दिवानी / मीरा की तरह
मुख मंजीर / समीर पर
अभी अभी नाचेगी
चाँधनी प्रौढ़ा मास्टरजी सी
नाक पर चश्मा चढ़ा
सितारों की / उत्तरपुस्तिका में जाचेंगी
विधवा झील / आंदोलित
साँत्वना के लिए
मन के कोलाहर को दबाने
ऊँचे स्वर में / रामायण बाचेंगी।''[62]

इस प्रकार शिवकुमार जी के गीत संख्या में अल्प होते हुए भी उल्लेखनीय हैं।

बालस्वरूप राही

'ये अनुभूतियाँ नितान्त मेरी है' यह कहकर भी उनमें समाज की संवेदनाओं का स्पष्ट अख्स अनायास उतारने वाले गीत-दर्पण के सर्जक राही अपनी अलग-अलग पहचान बनाते

हैं। हिन्दी की विकसनशील अवस्था के सूक्ष्म आलेख तैयार करते वे नवगीत की पृष्ठभूमि तैयार करने वालों में अग्रणी रहे हैं। उनकी अल्पसंख्यक रचनाएँ भी मानवीय चेतना के संघर्ष, आदिम भावों की संस्कारशीलता युगबोध की सजगता, समकालीन जीवन की अस्त-व्यवस्तथा, अनास्था, आशंकाओं की बहुलता का सत्य की कसौटी पर सहजता से चित्रित कर गुणवता के उच्चतर माध्यमों का मापदण्ड बन गई है। अभिनव आयामों को संभानाओं के नए झरोखों से सफल, राही, अपने गीत संकीर्ण सीमाओं से परे विस्तृत विचार-फलक सर्जित करते हैं।

प्रेम की शाश्वत अनुभूतियों से पगे किशोरवय के गीत 'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण' में कहीं-कहीं प्रौढ़ भाव-भंगिमा के संकेत भी दे जाते हैं। इस गीत संग्रङ में भावों का उद्दाम वेग सीमातीन होने के लिए व्याकुल होते हुए भी संयम की लक्ष्मण रेखा लांघता नहीं दीख परता। प्रेम की मादकता और इन्द्रधनुषी-सपनीली-रंगीली आभा इन गीतों का केन्द्रीय भाव है फिर भी पृष्ठभूमि में उदासी और दर्द की श्यामघटाएँ इन्हें और उभार देती हैं। भावुकता, तरलता आद्र सुकुमार भावों का गुंजन इस संग्रह की विशेषता है। स्वयं राही जो इसके संबंध में कहते हैं -

''कड़वे यर्थाथ के प्रति अनासक्त और उदासीन होकर अपने ही भीतर सिमट रस और मधु की कल्पना-डूबे गीत गाने की बेईमानी मैने क्यों की ?.... यदि परम्परा नाम की कोई वस्तु है और वह आदरणीय तथा संरक्षणीय है तो मेरी शाश्वत सत्यों के प्रति यह आसक्ति क्षम्य है, अन्यथा नहीं।.... अपनी कुठाएँ और परवशता अपने तक सीमित रख कर, अपनी समर्थता में दूसरे को साक्षीदार बनाना यदि अपराध है तो मैं अपराधी हूँ।.... आध्यात्मिक अनुभूतियों के सम्बन्ध मैं वे कहते हैं... इगो से पूर्णतया मुक्त न हो पाने के कारण, मैने किसी ऐसी दिव्य, विराट अलौकिक सत्ता की कलपना की जिसकी महानता के सम्मुख मेरा ऊँहं विसर्जित होते हुए पराजय का अनुभव करे।... गीतों में साधारणीकरण की संभावना अधिक होने से वे गीतों के प्रति अधिक आकर्षित हुए।''[63]

संग्रह के प्रारम्भिक गीत में ही वे कहते हैं -

''मैं न बुलाने गया कभी गीतोंको इनके द्वार,
येही पता पूछते सबसे, आए मेरे पास

HANSA MEHTA LIBRARY

एक शाम मेरे घर आकर बोले मुझसे गीत
राज तुम्हारा कभी किसी से हम न कहेंगे मीत।
पहले तो बहला-फुसलाकर जान लिया सब भेद
अब प्रचार करते फिरते हैं मेरे ही विपरीत
आँगन-आँगन मेरी बदनामी करते हुए रोज
गली-गली में करवाते हैं ये मेरा उपहास।''[64]

राही के गीतों में समसामयिक विकृतियों, दुर्बलताओं, असंगतियों तथा विसंगतियों पर करारे व्यंग्य करने का अटूट सिलसिला- ''ततकालीन सामाजिक व्यवस्था की विद्रूप विसंगतियों की विडम्बना उनके गीतों में मुखर होकर पनपी है। 'गजरे का एक फूल' नामक शीर्षक गीत में 'गंगा' और 'छिछले तालाब' का व्यंग्यात्मक सम्बन्ध समूची विडम्बना का सजीव प्रमाण प्रस्तुत करता है। 'प्रेम' उनका वर्ण्यविषय है। प्रेम में 'ममत्व' उनकी गीतों का गहन आकर्षण बिन्दु है। प्रेम के प्रति उनका स्वस्थ दृष्टिकोण है। वे गीत और वेदना का अटूट-अन्योन्याश्रित सम्बन्ध मानते हैं।

वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक चेतना और सहज अध्यात्मानुभूति उनके गीतों की आधार शिला है। नव सौन्दर्य बोध, प्रणय, अंतरगं अनुभूति, महानगरीय संत्रास, निराशा, संघर्ष, कुंठाहीनता, व्यंग्य, दार्शनिकता, आंचलिकता का विरोध उनके गीतों के वर्ण्य विषय है।

राही जी गीत शिल्प के सम्बन्ध में नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करतेहैं। वे संगीत, माधुर्य, भावुकता व मधुर शब्दावली को मीत का प्रमुख तत्व नहीं मानते वे गीत में भी खुरदरेपन को आवश्यक तथा आज की कविता की सही पहचान व नियति मानते हैं। जो उपर्युक्त तत्वों पर आघात करती है। ''गीत में वे उस लय को आवश्यक मानते हैं, जो टूट-टूट कर भी अपनी व्याप्ति और निरन्तरता गीत में बनाए रखती है व गीत में किसी रूढ़ छन्द का निर्वाह भी अनिर्वाय नहीं मानते।''[65] इनके गीतों में छन्द का बन्धन देखने को नहीं मिलता। गीत पंक्तियाँ सम-विषय आकार की हो सकती हैं, उदाहरणार्थ उनका ''अधूरी समाप्तियाँ'' शीर्षक गीत की मात्राएँ सम तथा विषम हैं। गीत आधुनिक जीवन की उष्मा में तप कर भावुकता से परे हटा

है। वे गीत में रागात्मकता की अपेक्षा बौद्धिकता पर अधिक जोर देते हैं। जबकि उनके गीतों में बौद्धिकता व रागात्मकता का अद्भूत समन्वय देखने को मिलता है।

उनके गीतों में भाषा 'जीवित भाषा' है अर्थात उत्रचलित कवित्वमय शब्दों के स्थान पर कवित्वहीन प्रचलित शब्दों का प्रयोग सार्थक मानते हैं। आज गीत में तरल भाषा का स्थान ठोस भाषा लेती जा रही है। वे गीत की प्रकृति लयमयता व आत्मा रागमयता मानते हैं। उनके गीतों की मुख्य विशे पताएँ हैं- संगीतात्मकता की अल्पता तथा अभिव्यक्ति की सफाई। उर्दू के प्रयोग का उन्होंने गीत में स्वीकार किया है। वे केवल पढ़ने के दृष्टिकोण से गीत लिखते थे इसलिए गीतों में गेयता कम है, प्रसंग अनुरूप गीत लिखना उनकी विशेषता है, शब्दों का अर्थ आडम्बर उन्हें पसंद नहीं वे आधुनिक नागर जीवन से विभिन्न उपमानों का चयन कर व अलंकारों का प्रयोग कर चित्रों को सजीव करते हैं। उनके गीतों में जनसामान्य में प्रचलित बोलचाल की भाषा का प्रयोग दिखता है। प्रादेशिक बोलियों का भी प्रसंगानुरूप सुन्दर, चमत्कारपूर्ण प्रयोग उनके गीतों में माधुर्य संचार करता है। व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध उनके गीत कहीं कहीं लिंगभेद का कृमपालन नहीं करते। पौराणिक-ऐतिहासिक उपमानों के भी दर्शन उनके गीतों में होते हैं। उनके गीतों में बिम्ब भी नवीन हैं -

''जब से ये छाए हैं खिली नहीं धूप
कुहरे ने पोंछ दिया क्षितिजों का रूप
सागर में तैर रही सूरज की लाश।''[66]

(मेघ को संबोधित)

हम को क्यालेना है परदेसी केसर से
बूढ़े हिमपात से
सड़ते तालाबों में खिले बासीजलजात से
हमको तो लिखने हैं गीत नए पिघले इस्पात से।

(भाव वद्रक बिम्ब)

ग्लैमर का नशा टूटता है जब / बड़ी थकन होती है
आँखो में स्वप्न नहीं, अश्रु नहीं, सिर्फ चुभन होती है।[67]

स्वप्नभंग को यहां प्रतीकात्मक दृष्टि से आकार दिया गया है। राही जी के गीतों में समृद्ध कल्पना तथा स्पष्ट भाव शैली परिलक्षित होती है, गीत को सर्वथा नवीन भावशैली में प्रस्तुत कर गीतकारों की दुनिया में अपनी एक अलग तथा अमिट छाप लोगों पर छोडी है।

रामावतार त्यागी

समकालीन गीतकारों से सर्वथा भिन्न साहित्यिक व्यक्तित्व रखने वाले त्यागी जी, गीत क्षेत्र में भिन्न परम्परा पोषण के अपने संकलप में पूर्णतया सफल हुए है। जो भी उन्होंने देखा, सहा और भोगा है उसे गीतों में वाणी दी है। इसलिए उनके गीत पाठकों का सचाई से सीधा साक्षात्कार करतो हैं। **''वे नई अनुभूतियों के समृद्ध गीत कवि है। उन्होंने जीवन में सौंदर्य और विकृति दोनों को महत्व दिया है। उनके गीतों में चित्रात्मकता है। उन्होंने संसार की पीड़ा, तिरस्कार और धृणा को संवेदना की भूमि में अनुभूत किया है। उन्हें अपने अहं पर आस्था है। जीवन का भोगा हुआ संदर्भ त्यागी की रचनाओं में निरलकृत रूप से प्रकट है।''**[68]

.निर्भीकता और स्वाभिमान कवि में कूट-कूट कर भरा हुआ है। जो उनके गीतों से फूटा पड़ता है। आम मानव के वे सच्चे साथी हैं। उसके दुखों पर हार्दिक अपनत्व का मरहम लगाते वे उनमें घुल-मिल जाते हैं। अदम्य प्राण चेतना, अटूट आस्था, आकर्षक स्वच्छन्दता ने उनके गीतों को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है। समाज से कदम-कदम पर अवहेलना पाने के बावजूद भी विद्रोह के स्वर अपने समग्र आवेश से उच्छ्वासित हुए हैं।

स्वातंत्रय और जिजीविषा के तेजपुंज त्यागीजी वेदना के भी गायक हैं। जीवन के प्रति उनका स्वस्थ दृष्टिकोण है, हार कभी मानी नहीं तथा समझौते कवि ने कहीं नहीं किए। अगम आदेशमय निर्झर से कवि के भाव, गीतों का आकार ग्रहम करते हैं। वेदना का स्वर त्यागी में बड़ा तीर्व है, जो सामाजिक, राजनैतिक, व्यक्तिगत विषमताओं से टकराकर असफलता बोध का फलित है। प्यार का जयघोष करने वाले कवि ने बुद्धि की अपेक्षा सच्चे भावों को अधिक महत्व दिया है। बालस्वरूप राहीजी कहते हैं -**''मुझे अपनी कविताओं से ज्यादा त्यागी की कविताएँ याद हैं। वह हमारी पीढी का सर्वाधिक संवेदनाशील और शिल्प-चेता लोकप्रिय**

कवि हैं। महान कवियों की इस भीड़ में उसकी लोकप्रियता का तेवर कुछ ऐसा ही है, जैसे कि, वट–वृक्ष के पास खिले सूरजमुखी की शबनमी मुस्कान।''[69]

''आँठवा स्वर'' उनका पहला कविता संग्रह है। दूसरा संग्रह है ''सपने महक उठे'' इसमें अनेक स्वरों के सुन्दर गीत हैं। कवि कहते हैं –

''मैंने फूल तो क्या कांटे भी जान बूझकर नहीं तोड़े
मैने स्वयं ही विशाल राजमार्ग त्यागकर सूनी पगदंडी से नाता जोड लिया है।''[70]

वे कहते हैं –

''मैंने बहुत दुख सहे, किन्तु जब मुझ से
वे नयन याद आते हैं जिन्हें बिकने की भी आजादी
नहीं मिली, तो में अपना दर्द भूल जाता हूँ।''[71]
''मेरे सहयोगियों, मेरी सुगन्ध तुम बटोर लो,
लेकिन आँसू मत बीनो।
यदि तुमने मेरे सारे कांटे निकाल लिए,
तो मैं कैसे महकूँगा।
तुम्हारे आँसू पीने से हर दर्द आत्मा सृदश लगने लगा है।''[72]

इस संग्रह के गीतों में कवि ने भावनाओं के अनमोल पारसमणि की महत्ता और सत्ता स्वीकार की है, जिसके स्पर्श से हर गीत लौहखंड से स्वर्णपिंड बन गया है। झूठी मुस्कानों के बदले वह सच्चे आंसुओं से प्रीत करता है और सहजताओं को सिंहासन पर आसीन करता है।

त्यागीजी का अगला संग्रह है ''गुलाब और बबूल वन'' जिसमें कवि प्रतिभा का सोज्ञवल दर्प कायम रहा है। इसमें वे कहते हैं-

''हम यह बहस छोड़कर कि हम में से
कौन अधिक घायल है आओ बबूल वन
से मिलकर गुलाब बोएं,
क्योंकि मन को कमल बनाने के लिए दर्द में नहाना ही होगा...''[73]

1982 में छपे उनके गीत संग्रह ''गाता हुआ दर्द'' में अन्य कवियों द्वारा संकलित उपर्युक्त दोनों संग्रहों के अधिकांश गीत है और कुछ नए गीत भी हैं। कुछ गीतों की पंक्तियां प्रस्तुत है-

''मेरे अधर जंजीर में बस इसलिए जकड़े गए
मेरी तलाशी जब हुई कुछ गीत भी पकड़े गए।''[74]

''चटखानी खुद ही खरीदी और ताले भी नए हैं
रह रहा हूँ कुछ समय से घर मगर मेरा नहीं है
गीत जिसमें आ रही दुर्गन्ध कुछ कुछ माचना की
लिख गया होगा कभी यह स्वर मगर मेरा नहीं है।''[75]

गीतों के प्रति उन्होंने अनेक जगह अपनी मार्मिक अभिव्यक्तियां दी है। एक स्थान पर वे कहते हैं -

''अश्रु अपनी ही व्यथा का निर्वसन तन
गीत जग भर के दुखों की आत्मा है।''[76]

त्यागीजी की प्रभावशाली तथा सशक्त अभिव्यक्ति के कारण आधुनिक गीतकारों में उनका विशिष्ट स्थान है। भाषा भावानुकूल है, जटिल से जटिल समस्याओं को सहज तथा सरल भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इतने सशक्त शिल्पपक्ष के प्रयोक्ता त्यागीजी शिल्प हेतु प्रयोग करने वाले उपकरणों में कई बार अनाड़ी सिद्द होते हैं। वे कहते तो हैं -

''छन्द के आलोचकों को यह समझ आता नहीं क्यों-
छन्द गीतों की व्यवस्था मात्र है, बन्धन नहीं है।''[77]

किन्तु उनका काव्य कहीं भी छन्दों के बन्धन से मुक्त नहीं है। वे पूर्वप्रयुक्त छंदो को लगातार दहराते रहते हैं। दूसरों द्वारा प्रयुक्त उपमानों पर भी अविश्वास दर्शाते हुए वे कहते हैं-

''सुनो ! तुम्हारे उपमानों पर मुझे भरोसा नहीं रहा।''[78]

वैसे तो आधुनिक हिन्दी के गीतकारों की एक लम्बी श्रृंखला रही है। उन सबका

विस्तृत परिचय देना यहां अपेक्षित नहीं है, केवल हिन्दी गीत की पहचान के लिए ही यह भूमिका प्रस्तुत की गई है। इसके साथ ही अब हम प्रमुख नवगीतकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर दृष्टिपात करेंगे।

प्रमुख नवगीतकार :

गीत का नवीन संस्करण नवगीत है, नवगीत के प्रमुख हस्ताक्षरों ने इस दिशा में नवगीत की अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए अपनी-अपनी पहचान भी दर्ज कराई है।

यहाँ हम प्रमुख नवगीतकारों के परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

डॉ. शंभुनाथ सिंह :

नवगीत की प्रतिष्ठा को विस्तार देने वाले प्रमुख सर्जकों में डॉ. शंभुनाथसिंह का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। नवगीत को जिस ऊँचाई के साथ शंभुनाथ सिंह ने स्थापित किया वह परवर्ती रचनाकारों के लिए एक मील का पत्थर साबित हुआ। हम यह भी कह सकते हैं कि शंभुनाथ सिंह ने नवगीत की पहचान को सार्वभौमिक बनाया और उसके वृत्त पर एक व्यापक विवेचना प्रस्तुत करके उसकी अस्मिता को स्थापित किया शंभुनाथ सिंह का महत्वपूर्ण अवदान यह रहा कि उन्होंने अपने समय के अनेक नये प्रतिभावान गीत हस्ताक्षरों को एक मंच दिया तथा हिन्दी काव्य की प्रवाहित अविधारा में नवगीत को एक विशिष्ट गरिमायुक्त पहचान के साथ अग्रसर किया। उन्होंने अनेक गीतकारों को नवगीत की समझ प्रदान की और उन्हें नवगीत लिखने के लिए तैयार भी किया। अपने अनेक आलेखों में उन्होंने गीत और नवगीत के अंतराल को स्पष्टरूप से विवेचित किया है। उनकी सर्जनात्मक क्षमता को हम अन्यत्र प्रश्तार देगें किन्तु यहां पर उनका परिचयात्मक विवरण देना ही हमारे लिए संगत है।

1917 ई में उत्तर प्रदेश में जन्म लिए डॉ. शंभुनाथ सिंह की भूमिका नवगीत की विकास-यात्रा में सर्वाधिक बहुमुखी है। काव्य सर्जना के अतिरिक्त वे आलोचना एवम् संपादन कार्य से भी संलग्न रहे हैं। डॉ. शंभुनाथ सिंह प्रतिनिधि नवगीतकार हैं, जिन्होंने छायावादी वायवी कुहासे को चीरकर मुक्त दृष्टि से जीवन और मनुष्य को देखने-परखने का नवीन प्रयत्न किया है। उनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ **''रूप रश्मि''**, **''छायालोक''**, **''मन्वन्तर''**,

''**उदयाचल**'', ''**दिवालोक**'', ''**समय की शिला पर, खण्डित सत्य**'' काव्य-संकलनों से कहानी के अंतर्गत संग्रहीत हैं। इन कृतियों की अभिव्यक्ति का मौलिक उदय 'उदयाचल' में दिखाई देता है, जहाँ कवि प्राचीनतम भावनाओं की केंचुल छोडकर जीवन के कर्मक्षेत्र से पलायन नहीं करता बल्कि यथार्थ का सामना करते हुए संघर्षो के धुन्ध को चीरने की तीव्र भावना से लालायित कुछ कर गुजरने का संकल्प लेता हुआ दिखाई पड़ता है। जीवन के प्रति उसकी यथार्थ संकल्पनात्मक दृष्टि स्वस्थ स्वभाविक सौन्दर्य-बोध को जन्म देती है। अस्वस्थ वीतराग मन की पलायनवादी वृत्तियों का विकृत संगीत इन गीतों की मूलचेतना से कोसों दूर है। 'मन्वन्तर' के गीतों को पढ़ कर लगता है कि कवि सैद्धान्तिक आग्रहों की कुहेलिका में जानबूझ कर घिरा है। गीतकार की सहजता से कवि यहाँ स्वयं ही पीछा छुड़ाता प्रतीत होता है। गीतकार की अपेक्षा यहाँ कवि प्रचारक अधिक है। संवेदना की आंच यहाँ मधुर नहीं लगती, मानवीय तत्वों का पूर्वाग्रह कवि की प्रभावोत्पादक गीत क्षमता का संकुल बनाये है। 'दिवालोक' कवि की प्रौढ़ काव्य-कृति है। 'माध्यम' में कवि 'नवगीत' परम्परा के अधिक समीप आया है। युगानुभूति के प्रति कवि की जागरूकता और सजगता बढ़ गयी है। मनुष्य की कोमलतम भावनाओं का संस्पर्श आंचलिक जीवन का समग्र बोध और देश की करुण-कहानी इस संग्रह में प्रतिगुंजित हुई है जो कवि को विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

शंभुनाथसिंह के गीतों में छायावादी संस्कार से लेकर नवयुग की पहचान और उसके अन्तर्बोध तक व्याप्त हैं। लोकरुचि की अछूती सामर्थ्य को कवि ने सहानुभूति के साथ ग्रहण किया है। उनकी रचनाओं में संगीत लोकधुनों की संगीत धारा प्रवाहमान है। लोक-धुनों पर अश्रित गीतों में संगीत की लहरें शब्दों में रची पची हुई रहती हैं -

''छिप-छिपकर चलती पगडंडी वन-खेतों की छाँव में।
अनगाये कुछ गीत गूँजते
हैं किरनों के हास में,
अकुलायी-सी एक बुलाहट
पुरवा की हर सांस में।
सूनापन है उसे छेड़ता छू आँचल के छोर को

जलखाते भी बुला रहे हैं बायल वाली नाव में,
अंग-अंग में लचक उठी ज्यों
तरुणाई की भोर में,
नभ के सपनों की छाया को
आँज नयन की कोर में।
राह बनाती अपनी कुस-कांटों में संख-सिवार में,
कांदो-कीच पड़े रह जाते, लिपट-लिपट कर पाँव में।''[79]

डॉ. शंभुनाथ सिंह के गीतों में हृदय की भावुकता का निर्बाध स्रोत का सोता फूट पड़ा है। **''अपनी कुशल गीति-कला का परिचय देते हुए उन्होंने अपनी समृद्ध विविध रंगी कल्पना का योग कर उनको और अधिक आकर्षक बना दिया है। उनकी सामाजिक चेतना ने अपनी गीत-सृष्टि के माध्यम से जागरूकता का उद्घोष किया है। उनकी सामाजिक चेतना समन्वित युगानुकूल लचक के साथ ऐसे विषयों को समाहित करती चली है, जिसकी मांग तत्कालीन परिस्थितियाँ कर रही थीं।''[80]**

सम्पूर्ण नवगीत-काव्य को वृहत परिप्रेक्ष्य प्रदान करने के लिए उन्होंने प्रतिनिधि नवगीतों के सम्पादन का जो गुरू उत्तरदायित्व निभाया है, उसका हिन्दी साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय स्थान रहेगा। एक आलोचक के रूप में डॉ. शंभुनाथ सिंह ने नवगीत पर बहुत अधिक नहीं लिखा है- किन्तु जितना लिखा है- वह नवगीत के स्वरूप को स्पष्ट करने में बहुत सहायक हुआ है। 'नवगीत दशक-1' की भूमिका में उन्होंने उन परिस्थितियों का विवेचन-विश्लेषण किया है, जिनके बीच से नवगीत का उद्भव हुआ है। उन्होंने स्पष्ट किया कि नवगीत न कभी काव्यान्दोलन था, न आज है; वह तो नयी कविता का जुड़वा भाई है। 'नवगीत-दशक -2' की भूमिका में उन्होंने नवगीत पर अपेक्षतया विस्तृत विचार-विमर्श किया है। हिन्दी गीत की पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से वे नवगीत के विकास को स्पष्ट करते हैं तथा उसकी विशिष्टताओं का निर्धारण करते हैं। 'नवगीत दशक-3' में वे नवगीत के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कविता के भविष्य की चर्चा करते हैं और प्रमाणित करते हैं कि, नवगीत वर्तमान हिन्दी कविता की वह प्राणवान धारा है जो हिन्दी कविता का भविष्य निर्धारित कर

सकेगी। एक आलोचक के रूप में उनकी ये मान्यताएँ नवगीत-काव्य के विकास में सहयोगी भूमिका निभाएंगी इसमें कोई संदेह नहीं।

पिछले दशक में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शंभुनाथसिंह के जो गीत प्रकाशित हुए, उनमें 'व्यंग्य' का स्वर प्रमुख है। कहीं आत्मव्यंग्य के माध्यम सामयिक जीवन की विसंगतियों को उदघाटित किया गया है, तो कहीं व्यवस्था को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है। उनके गीतों की अन्य महत्वपूर्ण विशिष्टता है - **नगर-बोध।** नगर-बोध की तीखी अभिव्यक्ति सहज एवं निश्छल ग्रामीण जीवन की, जो परिणीत नगरों में हुई है, वह बहुत करुण एवं त्रासद है, इस छद्‌म को कवि ने बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है-

''सोन हँसी हँसते हैं लोग
हँस हँसकर डंसते हैं लोग

रस की धारा झरती है
विष पिये हुए अधरों से
विंध जाती भोली आँखे,
विषकन्या-सी नजरों से!

नागफनी की बाँहो में
हँस हँसकर कसते हैं लोग।.....

चुन दिये गये हैं जो लोग
नगरों की दीवारों में
खोज रहे हैं अपने को
वे ताजा अखबारों में

भूतों के इन महलों में
हँस हँसकर बसते हैं लोग।

वे, हम, तुम और ये सभी
लगते कितने प्यारे लोग!
पर कितने तीखे नाखून

रखते हैं ये सारे लोग

खूनी दाढ़ों में सबको

हँस हँसकर ग्रसते हैं लोग।''[81]

शंभुनाथ सिंह के गीतों में प्रयुक्त होने वाले बिम्ब अप्रस्तुत-सापेक्ष नहीं है, जितने वे प्रतीक सम्पन्न हैं। परिणामतः उनके बिम्बों में वह वस्तुपरकता विद्यमान है। भाषा के सम्बन्ध में कवि की विचारधारा स्पष्ट है। एक ओर वे सहज एवं बोलचाल की भाषा को गीत के उपयुक्त मानते हैं, दूसरी ओर उनका आग्रह आंचलिक एवं लोकपरक शब्दावली की ओर रहा है। अपने समकालीन कवियों की तुलना में बोधगत आधुनिकता एवं प्रगतिशील चेतना उनमें विद्यमान रही है; उसी के बल पर वे नवगीत धारा को अपना उल्लेखनीय योगदान दे सके हैं। कहना न होगा कि उनके गीतों की भाव-प्रवणता, अनुभूतियाँ एवं कल्पना की सहज रंगीनी ने उन्हें हिन्दी के प्रतिनिधि एवं महत्वपूर्ण गीतकारों में प्रतिष्ठित ही नहीं किया, अपितु अग्रिम पंक्ति में आलेखित भी कर दिया है।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' उन नवगीतकारों में से हैं, जो एक लम्बे समय तक अघोषित साधना करने के पश्चात आठवें दशक में एक सशक्त नवगीतकार के रूप में अभिस्वीकृति पाने में सफल रहे हैं। यों तो सन् 1958 में **'ताज की छाया में'** प्रकाशित उनके गीत अभिनव शिल्प एवं संवेदना का प्रमाण लेकर उपस्थित हुए थे तथा तत्कालीन पत्रिकाओं में उनके गीतों का प्रकाशन नियमित रूप से होता रहा। उनकी गीत रचनाओं का अविरल प्रकाशन 1970 ई. में देखा जा सकता है। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का प्रथम गीत-संग्रह, **'पथरीले शोर में'** 1972 में प्रकाशित हुआ था। तदुपरान्त **'पंख कुटी महरावें'** (1978), **कुहरे की प्रत्यंचा** (1979) और **कालजयी** (खण्ड काव्य 1977) भी प्रकाशित हुए। नवगीत दशक-1 में भी उनके कई गीत संकलित हैं। श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीत काव्य का मूल्यांकन व्यापक दृष्टि की अपेक्षा रखता है। इनके काव्य में युगीन त्रासदी, प्राकृतिक अभिनवता, सामाजिक जीवन का विद्रूप, साहित्य जग का छदम् मानवीय संबंधों की अस्मिता, व्यक्तिगत जीवन की विडम्बनाएँ तथा छूटे

हुए सन्दर्भों की स्मृति आदि अनेक विषयों की संशक्त अभिव्यक्ति हुई है परन्तु सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनके काव्य में इन विषयों की अभिव्यक्ति के लिए जो शिल्प प्रयुक्त हुआ है उसकी विविधता एवं गहनता उसकी असीम् समृद्धि का आधार बनी है।''

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीतों का धरातल आत्मकेन्द्रित नहीं है अपितु वैयक्तिक कुण्ठा, प्रतिनिवेदन प्रकृति चित्रण की जमीन तोड़कर जीवन के कटु एवं वित्त सत्यों को आधुनिक संवेदना से जोड़कर पेश करता है। महानगरीय संत्रास को जताने के लिए कवि व्यंग्य के सहारे गहरा उतरा है। दैनिक जीवन की विद्रूपताओं, विसंगतियों के नंगेपन को व्यक्त करने के लिए गीतकार ने व्यंग्य का तेवर अख्तियार किया है। मूल्य-विघटन की खतरनाक दल-दल को कवि ने मिथकों, प्रतीकों, बिम्बों का सहारा लेकर दृश्यांकित किया है -

''उज्जयनी के राजमार्ग पर
भटकें चन्द्रापीड
राजा की दुर्गति
कौतुक से देख रही है भीड़
काम नहीं आ पाया
प्रवचन
महात्म्य शुकवास का
आगत, विगत, अनागत
सब पर
चक्र चला इतिहास का
कौंध रही बिजलियाँ घनों में
धू-धू जलते नीड़।
घर लगता
बसन्तसेना का
लुटे हुए प्रासाद-सा
धरे हाथ-पर-हाथ

हेरते

चारुदत्त यह हादसा

घिसी हुई कौड़ी-सी आँखें

झुकी-झुकी सी रीढ़।''[82]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' की भाव-भाषा अधिक समृद्ध है। काव्य के अनुरूप भाषा का रूप भी बदलता जाता है। उनकी भाषा में सपाट बयानी भी है और लक्षणा-व्यंजना का आध्यारोपण भी हुआ है किन्तु वह नयी कविता की सपाट शैली व बड़्बोलेपन से तथा छायावादी कुहरिल शैली से सर्वथा भिन्न है। कवि का मानना है कि छन्द नवगीत के बाह्य अंग से जुड़ा हुआ है किन्तु उससे भी अधिक वह नवगीत की आन्तरिक और रागात्मक संवेदना से सम्पन्न है।

गीत-साधना के अतिरिक्त नवगीतकार देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने नवगीत के समीक्षात्मक आसंगों को लेकर समय-समय पर ठोस और शोधपूर्ण सामग्री हिन्दी-साहित्य को प्रदान किये हैं। इनकी मौन साधना के कारण ही एक प्रबन्ध -काव्य ''मैं साक्षी हूँ'', ''तीन'' नवगीत-संग्रह तथा दो गजल संग्रह प्रकाश में आये हैं। इनके गीतों में जीवन के साथ जुड़ने की ऊर्जा हैं। इनके नवगीतों की अतिरिक्त विशेषता, **'बौद्धिकता का समावेश है जो वर्तमान समय के गीतों की अनिवार्य आवश्यकता बन चुकी है।'** क्योंकि इसके बगैर साम्प्रतिक जीवन की स्थितियों का यथार्थ-आकलन-विश्लेषण और विवेचन प्रायः मुश्किल होता है। कवि ने गीतों में अर्थहीन कोलाहल को सार्थक लयात्मकता प्रदान की है। नयी कविता की तरह उनके गीतों का तेवर आक्रामक नहीं है-

''आज के सवालों को

अनजाने कल पर हम

यों कब तक टालते रहें ?

निर्णय तो लेना होगा कुछ भी

इस या उस पार का,

आँधी में किसका विश्वास करें
इस टूटी नौका; या
बाखदी ज्वार का।''[83]

वीरेन्द्र मिश्र

वीरेन्द्र मिश्र की दृष्टि में गीत-धर्मिता आम आदमी के अधिक समीप है, यद्यपि उसकी अभिव्यक्ति अधिक जटिल है, इसी कारण वे भाषा को कथ्य के अनुरूप ढालते हुए सस्वर हो जाते हैं। तीन दशकों से भी अधिक समय तक गीत से प्रतिबद्ध रहकर श्री वीरेन्द्र मिश्र ने न केवल रचना के धरातल पर इसे समृद्धि प्रदान की, अपितु इसके पक्ष में सैद्धान्तिक धरातल पर भी उन्होंने लम्बा संघर्ष किया है।

'अविराम चल मधुवन्ती'(1967) 'लेखनी बेला'(1957) तथा 'गीतम'(1953), गीत संग्रहों में वीरेन्द्र मिश्र के श्रेष्ठ गीत विद्यमान हैं। इनके अन्य प्रकाशित गीत संकलन - 'झुलसा है छायानट धूप में'(1980), 'धरती गीताम्बरा'(1980) तथा 'शांति गंधर्व'(1984) हैं। इनके अतिरिक्त उनके अनेक गीत पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित होते रहें हैं। कवि द्वारा संकेतित अन्य अप्रकाशित संकलन हैं- 'शनि गांधार', 'सेतु-संगीत', 'जल रही है चारुकेशी', 'सिन्धु भैरवी', 'आखत ध्रुपद' तथा 'अंतरा और अन्तराल'। मिश्र जी के गीतों की अनेक भंगिमायें हैं। उन्होंने बालगीत भी लिखे हैं, राष्ट्रगीत भी तथा कुछ फिल्मों के लिए भी गीत रचना की है। इनके गीत आधुनिक गीत-पद्धति में संगीत के संस्कारों के साथ लिखे गये हैं। गीतों में बौद्धिक व्यंजनाएँ और निष्पतियां कवि की अनुभूति से प्रच्छन्न होकर आयी हैं। मिश्र जी के गीतों में एक साथ युगीन कटुता, संत्रास और भोगे हुए यथार्थ का सुलझा हुआ आसव प्राप्त होता है। कवि महानगरीय संत्रास को वहां के गली-कूचे में मंडराते, विद्रोह और असन्तोष को तीक्ष्ण ढंग से न कहकर कोमलता के साथ सहेजता है। व्यंग्य वीरेन्द्र जी के गीतों को अन्जाने ही प्रभावोत्पाद बनता है।

गीत संग्रह 'गीतम' के गीतों में भावनाओं की गम्भीरता और सरल व्यंजना है। सुबोध संगीत-शैली का आनुभूतिक स्तर को ताजगी देता है। सामाजिक भावना से भरा हुआ कवि

प्रत्येक चरण में मानवता को संवेदना की शक्ति से पहचानता है। सीमित-परिधि में युग-जागरण और आत्मसजगता को दृष्टि-बिन्दु तक लाकर उसे निष्ठा के साथ साकार करने में कवि सफल हुआ है। वह युद्ध का विरोधी है और शांति का समर्थक। राष्ट्र के प्रति निष्ठा, पूंजीवाद का विरोध, विश्व बन्धुत्व की कल्पना और अमानवीय तत्वों का विरोध वीरेन्द्र मिश्र के गीतों में जगह-जगह पर टपकता है। कवि का सौन्दर्य और प्रणय लालसा से सम्पृक्त अंतः मानस गीतों में छलक पड़ा है। पीड़ा और व्यथा की आकुलता को भी कहीं-कहीं अकृत्रिमता से व्यक्त किया गया है। दूसरे गीत-संग्रह 'लेखनी बेला' में कवि ने विभिन्न गतिविधियों की अनुभूतियों के अन्तर और व्यक्तित्व को उद्भाषित करने की अपूर्व क्षमता का परिचय देते हुए नवीन क्षितिज का निर्माण किया है। सामाजिक जागरूकता को नवीन अभिव्यक्ति से उजागर करते मानवतावादी गीतों के अमूल्य स्वर इस संग्रह की अतिरिक्त विशिष्टताएँ हैं। इस संग्रह की 'मसूरी और देश' रचनाएँ पर्याप्त ख्याति प्राप्त हैं। 'मसूरी' में कवि की सहज- हृदय की अभिव्यक्ति दृश्य-प्रभाव क्षमता को रेखांकित करती है। प्रकृति के प्रति कवि का आन्तरिक अनुराग निर्व्याज रूप से फूटा है जिसमें गीत की सहजता और प्राकृतिक चित्रों की ग्रहणशक्ति कवि के राग-बोध के साथ साकार रूप में उभर कर आई है। प्रतीक व उपमानों के नवीनतम प्रयोग समाविष्ट हैं। 'देश' रचना की सांस्कृतिक शांतिप्रियता की पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में कवि ने अपनी लेखनी का सफल प्रयोग कर आज तक उपेक्षित अन्तर्राष्ट्रीय तत्वों को सशक्त वाणी दी है।

'अविराम चल मधुवन्ती' वीरेन्द्र मिश्र का परिपक्व नवगीत संकलन है। इसकी भूमिका में इसके कथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है - **''विगत दशक जहाँ एक ओर मेरे जीवन की व्यवस्था-अव्यवस्था पर एक के बाद एक धूल और रंगोली की परतें छोड़ता रहा है और हृदय पर चोट करता रहा है, वहीं दूसरी और हिन्दी कविता तथा गीत के धरातल पर भी अनेक शुभ-अशुभ मूल्य बिखरा गया है। इस सन्दर्भ में निरन्तर टूटने की प्रक्रिया के बहुरंगी क्षण इस संकलनान्तर्गत आकलित हैं। सचमुच ये वही क्षण हैं, जिनके कारण कालदंश की पीड़ा के कारण ध्यान बंटता रहा है। इस प्रतीति की कुछ रचनाएँ इस संग्रह मैं भी हैं।''**[84]

'अविराम चल मधुवन्ती' में अंतरंग और विशिष्ट आस्थाओं की अभिव्यक्ति ने कवि की

संश्लिष्ट भावनाओं को तीव्रता से उजागर किया है। गीतों में कवि की प्राण-चेतना और स्फूर्ति में निर्वैयक्तिक चेष्टाएँ अनुस्यूत हैं। **''नवगीत विधा को अपनाकर कवि ने सृष्टि की विविधता प्रेम और दुलार से सिक्त कर राग के स्वरों में ढाला है।''**[85] इस गीत-संग्रहों में जहाँ नदी, झरना, झील, वर्षा, समुद्र, प्रकृति आदि को चित्रांकित करते आंचलकिता प्रधान गीत हैं वही युगीन समस्याओं से जुड़े कई सशक्त गीत भी ध्यान आकर्षित करते हैं। प्रकृति इन गीतों की संवेदना और शिल्प की प्रमुख घटक हैं।

'झुलसा है छायानट धूप में' के गीतों तक आते-आते वीरेन्द्र मिश्र यथार्थोन्मुखी चेतना से समग्रत सम्प्रक्त होते दिखाई देते हैं। इस संग्रह की रचनाओं में सामयिक जीवनकी विसंगतियों और विद्रूपताओं को अधिक तीव्रता से उभारने का प्रयत्न किया गया है कदाचित इसी कारण यहाँ व्यंग्य की प्रवृत्ति विशेष रूप से उभर कर सामने आई है। कथ्य की इस नूतन भाव-भंगिमा ने मिश्र जी के गीतों की भाषा के भी नये रूप में ढाला है। शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का सर्जनात्मक संदेश इस संग्रह के गीतों की प्रमुख विशिष्टता है। पूंजीवादी व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए कवि अपनी प्रगतिशील चेतना का परिचय निम्न पंक्तियों में देता है -

''रोटी की आयु बड़ी छन्द की व्यवस्था से

इसीलिए शब्दों का युद्ध है अवस्था से

लाभ के अंधेरे में नाच रहे व्यापारी

मृत्यु के महोत्सव में रस की ठेकेदारी

विष से है सराबोर

अमृता सुराही ।''

नवें दशक में वीरेन्द्र मिश्र के अनेक श्रेष्ठ गीत ''साप्ताहिक हिन्दुस्तान'' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे जिनमें जीवन के हर छदम को अनावृत करने के प्रयास- दिखाई देते हैं।

गीतिकाव्य के मंच पर वीरेन्द्र मिश्र ने छायावादी प्रकृति-प्रेम एवं भावुकता का समन्वय

कर जटिल यथार्थ के झटकों और पीड़ाओं को रहकर स्वस्थ और समर्थ जीवन-दर्शन का साक्षात्कार किया है। शिल्प की दृष्टि से उसका योगदान अद्वितीय है। गीतकार ने मुक्त छन्द के अपने रूप-विधान में शब्द-स्वरों को एक साथ बांधा है। भावपक्ष की तन्मयता उसके कलापक्ष से बाधित नहीं हुई है। मिश्र जी की दृष्टि मूलतः मानवतावादी है। प्रथम गीतों के साथ राष्ट्रगीत, प्रगतिशील और प्रयोगशील गीत भी इनकी लेखनी से निःसृत हुए हैं। रोमानी प्रवृति के साथ उनमें प्रगति की भी तीव्र भावना परिष्कृति पा सकी है लेकिन इधर इनका लेखन व्यक्तित्व नयी कविता के चाल-चलन से प्रभावित होकर नवीन अप्रस्तुत विधान और प्रयोगों के आधुनीकरण के मोहजाल में उलझकर काव्य-तत्व से दूर छिटककर खण्डित होता जा रहा है। मिश्र जी ने गीत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व छन्द वैविध्य के साथ अद्भूत तथा अनोखा सम्मिलन कर अपनी गीत-सृष्टि की अतिरिक्त विशेषता-गेयता को सिद्ध किया गीतिकाव्य को समृद्ध कर साहित्य को श्रेष्ठ और सार्थक बनाने वाले ऐसे गीतकारों पर हिन्दी साहित्य को गर्व है।

तीन दशकों से अधिक समय तक मिश्र जी नवगीत से प्रतिबद्ध रहे हैं। उसके पक्ष में उन्होंने सैद्धान्तिक धरातल पर भी संघर्ष किया किन्तु ईमानदारी से वे नवगीत के सृजन और आलोचना कर्म में जुटे रहे। प्राचीन यान्त्रिक व्यवस्था को परिवर्तित कर नूतन स्थापनों को प्रतिष्ठित करने के प्रयास में जिस दृढ़ संकल्प कठोरता एवं शुष्कता की आवश्यकता होती है उसे गीतिकाव्य की प्रकृति के प्रतिकूल होने पर वीरेन्द्र मिश्र ने साकार किया है।[87]

'गीतम' और 'लेखनी बेला' के गीत समष्टिपरकचेतना की दृष्टि से समकालीन गीतों से एक कदम आगे हैं। उनमें भाषा की बिंबशक्ति और आधुनिक बोध तथा लयों की अभित्रण उपयोजनाएँ है।

'शांति गंधर्व' और 'धरती' गीताम्बरा में देशभक्तिपरक गीत हैं। कई गीत हमारे महान नेताओंको उद्देश्य करके लिखे गए हैं।

अविराम चल मधुवंती में कवि की प्राण चेतना और स्फूर्ति के साथ परि-पक्क कवि प्रतिभा के दर्शन होते हैं। नवगीत की संवेदना और शिल्प सम्बन्धी यथान्मुखी आधुनिक चेतना

मिश्र जी के इस संकलन में उनकी रागात्मिकता वृत्ति से अनुस्यूत होकर अद्‌भुत सौंदर्य से दीप्त हो उठी है। इसमें कवि सामाजिक जीवन की निर्माणपरक और विघटनकारी, सृजनात्मक और विध्वंसात्मक अनुभूतियों को अपनी सूक्ष्मान्वेषिणी वृत्ति से परखता है और उनमें अपेक्षित सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है।

झुलसा है छायानट धूप में के गीत पूर्णरूपेण यथार्थोन्मुखी चेतना से सम्पन्न सामाजिक जीवन की विसंगतियों से संलग्न शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सर्जनात्मक संदेश से युक्त और प्रगतिशील विचारसरणियों से प्रोत हैं, साथ ही नवगीत अधिकाधिक विशेषताओं को अपने में समाविष्टि किए हुए हैं।

रोमांसिक कल्पनाशीलता रहास्यमयी भावनात्मकता रूप यौवन की आकर्षक परछाइयाँ उनके गीतों में सौन्दर्य की सृष्टि करती है और रस की फुहारों से पाठकों को भिगो देती है। प्रेमभाव उनके गीतों का आद्यभाव रहा है। प्रकृति, वंदना, जिजीविषा, जीवन देशप्रेम आस्था और श्रद्धाभावों से उनके गीतों का फलक सुशोभित हुआ है। समृद्ध से उसे अगाध प्रेम है। सरसता उनके गीतों की धुरी है।

दिसम्बर 1957 को इलाहाबाद में हुए साहित्यकार सम्मेलन की कविता गोष्ठी में वीरेन्द्र मिश्र ने नवगीत के मूल्यांकन पर एक संक्षिप्त निबन्ध 'नई कविता नया गीत' पढ़ा-

''हिन्दी में एक नए गीत का जन्म हुआ है। यह नया गीत फार्म और कंटेड दोनों ही पक्षो में समृद्ध हुआ है। इसमें कहीं हम गीत की दिशा में संपन्न हो रहे प्रयोगों तथा जागरुकविचार शक्ति को भुलाए नहीं दे रहे हैं।''[88]

मिश्र जी ने अपने दूसरे लेख में-नवगीत को अभिनंदित करने के लिए श्रोता-वर्ग से अनुरोध किया है कि - **''मैं स्वयं मौन होकर लेखनी की उगलियोंसे गीत-वमर्श को मुखरित होने देने के लिए कुतूहल और उत्कंठा की भूमिका पर अपने पाठकों और श्रोताओं से नए गीत के अभिनन्दन का अनुरोध करता हूँ।''**[89]

नवम्बर 1965 में धर्मयुग में वीरेन्द्र मिश्र के गीत उनकी गीत सम्बन्धी धारणाओं के साथ प्रकाशित हुए। मिश्र जी का पहला गीत संग्रह 'गौतम' सन 1956 में प्रकाशित हुआ।

इसके गीत सामाजिक चेतना और संघर्षरत गतिशील जीवन उष्मा से ओतप्रोत है।

''लू लपंट से जो निकल कर आ रहा है
पूछ उससे अर्थ जीवन का जगत का।''[89]

'गीतम' में उनका जीवन दर्शन यथार्थवाद की ओर झुकता प्रतीत होता है:-

''स्वप्न के मेले सजाते ही न रहना
सत्य के ईमान का भी ध्यान रखना।''[90]

इसमें संगीतात्मकता का स्वर भी गुंजित है:

''देखती दुनिया, चलता चल राह का राही
समय चुपचाप उम्र के वस्त्र बदलता जाता।''[91]

सन 1958 में गीतकार का दूसरा संग्रह 'लेखिनी बेला' प्रकाशित हुआ। इसमें कवि जीवन तथा साहित्य दोनों में परिपक्वता प्राप्त करता है।

''भैरवी का है समय, यह ही हमें भ्रम हो रहा है।
रोशनी के रास्ते मोड़ पर तम हो रहा है।''[92]

इसमें गहन जीवानानुभूतियों की बहुमुखी और बेलाग अभिव्यक्ति है।

''मेरे मन तुम चकित न हो,
इस चलती फिरती गठरी पर
अपने में ही केन्द्रित सीमित
युग का यह इंसान है।''[93]

इनका तीसरा गीतसंग्रह 'अविराम चल मधुवन्ती' 1967 में प्रकाशित हुआ। वास्तव में इसे मिश्रजी के नवगीतों का प्रथम प्रतिनिधि संकलन कहा जा सकता है। इसमें कवि की अदम्य आस्था और सशक्त जिजीविषा मुखरित हुई है।

''सतही सामाजिकता के मंच भरे
इन चायधरों का पात्र नहीं हूं मैं

पर टूटे मूल्यों के कोलाहल में
यह सच है दर्शक मात्र नहीं हूँ में
हलचल के बीच विसर्जित संबल लूँ,
या बाँधू बिस्तर और कहीं चल दूँ।''[94]

युगबोध की कटुता से जूझना-टूटना और फिर सँभलने के यथार्थ मार्मिक चित्र मन को बाँध लेते हैं।

छायावादी गीत शैली से भिन्न नयी चेतना को अभिव्यंजना देने वाले गीत-कारों में विरेन्द्र मिश्र का नाम महत्वपूर्ण है 'गीतम' उनकी रचनाओं का एक उत्तम काव्य संकलन है। अनुभूति की सचाई के साथ-साथ उसका सरल और स्पष्ट भाषा में अभिव्यक्त होना इनके गीतों की विशेषता है। संगीत का तत्व आद्योपान्त विद्यमान रहता है। मानवतावाद को गीतों में अभिव्यंजना देकर वीरेन्द्र मिश्र प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक प्रतीत होते है। प्रणय के गीतों में सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण और व्यथा की गहनता अत्यधिक लक्षणीय है। विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से कवि ने सुन्दर अप्रस्तृत योजना को गीतों में प्रस्तुत किया है। जहाँ कहीं कवि ने राष्ट्रीय पक्ष को प्रस्तुत करने वाली गीतियों का निर्माण किया है वह संस्कृति, अतीत के गौरव और वर्तमान के स्वरूप पर विचार करता है। कवि ने शोषण और विषमता के विरुद्ध अपनी आवाज सदैव तेज की है। वह विश्व बन्धुत्व का हामी है। एक गीतकार के नाते वीरेन्द्र मिश्र के काव्य में कोमल, मादक एवं मधुर स्मृतियों अनुभूतियों का सुन्दर कलात्मक रूपायन मिलता है। लोक प्रचलित मुहावरों मैं अपनी भावनाओं में कला के साथ प्रस्तुत करने के कारण उनके ऊपर यह आरोप लगाया जाता है कि वे फिल्मी लयों के समान सस्ती लोकप्रियता की और बढ़ते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। जनभावना के गायक के सभी गुण उनमें विद्यमान हैं।

उमाशंकर तिवारी

जुलाई 1940 में उत्तरप्रदेश के गाजीपुर जिले में जन्मे उमाशंकर तिवारी नवगीत साहित्य के प्रतिनिधि हस्ताक्षरों में से एक हैं। एम.ए. (हिन्दी) करने के बाद इन्होंने हिन्दी में पीएच.डी. भी किया। आठ वर्षो तक रानीपुर, आजमगढ स्थित इण्टर कालेज, डिग्री कालेज

में हिन्दी के प्राध्यापक रहे तत्पश्चात डी.सी.एस. के स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊनाथ भंजन, आजमगढ़ में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रहे।

इनकी रचनाओं का आरम्भ 1955 से होता है। 1960 से पत्र-पत्रिकाओं में इनके गीतों का प्रकाशन आरम्भ हुआ। 'जलते शहर में' गीत संकलन 1968 में प्रकाशित हुआ। डॉ. शंभुनाथसिंह द्वारा सम्पादित नवगीत श्रेष्ठ समवेत संकलनों 'नवगीत दशक-2' तथा 'नवगीत अर्द्धशती' में तिवारी जी के बहुत अच्छे गीतों का समावेश हुआ है जो उन्हें श्रेष्ठ और सफल नवगीतकार होने का आभास दिलाते हैं।

उमाशंकर तिवारी 'नवगीत' को 'नयी-कविता' के आगे की विधा मानते हैं जो आयामों के नये द्वार खोलती हुई आज के युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि बन गई है- "यह पॉपुलर राइटिंग से परे कलात्मक होते हुए भी लोक-सम्पृक्त कविता है। इसमें अवचेतन में अवस्थित भोगे हुए सत्य अनुभूति के स्तर पर बिम्बों का रूपाकार ग्रहण कर स्वतः स्फूर्त होते हैं। इसके पास 'दस्तावेजी घोषणापत्र' नहीं है और न तो 'नयी कविता' के फैशन वाले मॉडल ही हैं। नवगीत युग-सापेक्ष होने के नाते अपने आप में भरपूर अर्थबोध रखता है, फिर भी मेरी दृष्टि में 'नवगीत' और 'नयी कविता' दो नाम नहीं हैं। यदि हैं तो कविता की राजनीति के नाते।"[96]

कवि की दृष्टि में - **"बिना गुनगुनाये काव्य-सृजन सम्भव नहीं है। सृजन का क्षण सर्वदा महिमामय होता है। 'मैं' लय और छन्द को गीत की अनिवार्यता मानता हूँ। वैसे विषयवस्तु की जटिलता को ध्यान में रखकर अर्थ की लय भी स्वीकारी जा सकती है। उसी प्रकार छन्दानुशासन से अलग नये छन्दों के अविष्कार भी किये जा सकते हैं। गीत के लिये आज की कविता की भाषा से अलग किसी प्रकार की सांगीतिक भाषा या विशेष प्रकार की पदावली का होना जरूरी हो, ऐसा मैं नहीं मानता। कथ्य के लिहाज से खुरदुरी भाषा की तलख अभिव्यक्ति भी मेरी दृष्टि में अच्छी से अच्छी गीति रचना को जन्म दे सकती है।"**[97]

खुरदरी एवं विषयानुकूल भाषा के माध्यम परिवेश को जीवन्त से उभारने वाले बिम्बों की सृष्टि करने में उमाशंकर तिवारी बहुत सफल रहे हैं। सातवें दशक में प्रकाशित होनेवाले नवगीत संकलनों में श्री उमाशंकर तिवारी के गीत संकलन **'जलते शहर में'** का महत्वपूर्ण

स्थान है। नवगीत ने व्यष्टिपरक सीमाओं को तोडते हुए समष्टि के साथ गीत को जोड़ने का जो महान प्रयास किया है, उसमें **'जलते शहर में'** की रचनाओं का भी विशिष्ट योगदान है। युगीन त्रासदी को कवि ने बडी सहजता एवं सजगता के साथ मुखरित किया है-

''टूटे दरवाजों पर बिखर गयी राख
जलता है सिगरेट की आग से शहर
सभी और चीख और शोर
इन्सानी दर्द सभी ओर
दहशत का अन्धा दानव
लील रहा सभी ओर-छोर
कुत्ते-से भाग रहे पागल इन्सान
हर घर है बना हुआ एक मौत घर''[98]

अपने गीतों के सन्दर्भ में कवि का कहना है - **''गीत में मुझे तो वे सारी चीजें सहज रूप में मिल जाती हैं जो मेरी अभिव्यक्ति के लिए जरुरी है। छन्द मेरे लिए कभी मजबूरी रहा भी नहीं, क्योंकि इसका प्रयोग मैंने हर जरूरत के तहत किया है।''**[99]

माहेश्वरी तिवारी :

अगस्त 1939 में बस्ती, उत्तरप्रदेश में जन्मे माहेश्वर तिवारी गोरखपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी से एम.ए. करने के पश्चात् बस्ती में अध्यापन कार्य से जुड़े और नौ वर्षो तक अध्यापन के बाद वे गोरखपुर में रहते हुए पत्रकारिता और फिर स्वतन्त्र लेखन से जुड़े रहे।

उनकी रचनाओं का प्रकाशन ''पाँच जोड़ बाँसुरी'' तथा ''एक सप्तक और'' में पहले ही हो चुका है। इनके अतिरिक्त धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवनीत, कादम्बिनी, ज्ञानोदय, लहर, कैक्टस्, युयुत्सा शब्द आदि प्रमुख पत्रिकाओं में समय-समय पर आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं। आपका प्रकाशित स्वतन्त्र गीत-संग्रह 'हरसिंगार कोई तो हो' है।

माहेश्वर तिवारी नवगीत के काव्यत्व और कलात्मकता को उसकी पहली शर्त मानते हैं। उनके अनुसार 'नवगीत' अकविता, स्वीकृत कविता, श्मशानी कविता, सहज कविता,

विचार कविता आदि की तरह केवल नारा कभी नहीं रहा। रचना के सन्दर्भ में वे लिखते हैं -

"रचना अपने मूल में रचनाकार का नितान्त निजी अनुभव या अपने आस-पास से सीधे साक्षात्कार का परिणाम होती है। किन्तु अभिव्यक्ति तक पहुंचते -पहुंचते वह अनुभव या वह साक्षात्कार व्यक्तिवादी मनोविलास की अभिव्यक्ति न होकर समूह मन की चिन्ता, छटपटाहट और कभी-कभी हर्ष उल्लास भी बन जाती है। आज ऑक्टोपस संस्कृति अपनी विविध रूपाकारों वाली टहनियों से व्यक्ति और समाज को अपने घेरे में लेने को प्रयत्नशील है। ऐसी स्थिति में अपने अस्तित्व और अपनी अस्मिता को बचाये रखने के संघर्ष को यदि कुछ सार्थक नाम दिये जा सकते हैं तो उनमें से नवगीत भी एक है।...... अपनी रचनात्मक यात्रा में नवगीत ने मिट्टी की सोंधी सुवास के साथ ही साथ एक सर्वथा नयी संगीतात्मकता दी हिन्दी कविता को। नवगीत की यात्रा स्वस्थ समाज के सामाजिक चिन्ताओं के व्यापक धरातल की पडताल है। हर जुलूस में शामिल होकर झंडा लेने जोर-जोर से जय-जयकार करनेवालों ने कुछ समय के लिए अवश्य नवगीत को अपनी अक्षमता और कुहासे से घेर लिया किन्तु अब वे और दूसरे जुलूसों में शामिल हो गए हैं, इसलिए यह खतरा टल गया है। ऐसे लोगों ने नवगीत में भी वैसा ही कार्बन लेखन किया है जैसा कुछ लोगों ने नयी कविता में किया था। ये प्रतिभाहीन घुसपैठिये थे। अच्छा ही हुआ कि उन्होंने अपनी कमजोर प्रतिभा तथा निरन्तर नये-नये जुलूसों में झण्डा बरदारी करने की अपनी नियति समझ-पहचान ली। अराजक तथा शिविरग्राही समीक्षा की बैसाखी बहुत दिन उनके काम आनेवाली नहीं है। कविता अन्ततः केवल छन्द नहीं है, किन्तु वह सिर्फ नारा या आन्दोलन भी नहीं है।.... हिन्दुस्तान में कविता को लोगों से जोड़ने और कविता के अपने लम्बे जीवन के लिए छन्द जरूरी है। अन्यथा सिर्फ पाठ्यक्रमों या पुस्तकालयों में संग्रहीत होकर वह जीवित नहीं रह पाएगी।"[100]

इन्द्रिय संवेद्य बिम्बों का निर्माण करते हुए माहेश्वर तिवारी ने आज के जीवन की टूटन, व्यथा एवं यातना को लयात्मक अभिव्यक्ति दी है। प्रकृति उनके अनुभवों के सम्प्रेषण का सशक्त माध्मय है -

"लहरों में आधे से झुके हुए

थकी हुई नावों के पाल

विष भींगे शीशे-सी चुभती है

अमलतास की फूली डाल।"[101]

श्री माहेश्वर तिवारी के नवगीत यों तो आरम्भिक स्थिति से ही प्रकाशित होने शुरु हो गये थे किन्तु उनका स्वतन्त्र गीत संकलन 'हर सिंगार कोई तो हो' देर से प्रकाशित हो पाया जिसमें उनके सन् 1964 से सन् 1974 तक के 74 गीत संकलित हैं। यह तथ्य नवगीत के इतिहास को नवीन रूप में रेखांकित करता है। भाषा, बिम्बों एवं संवेदनाओं का इस रूप में नवता-सम्पन्न होना माहेश्वर तिवारी के गीतों को तत्कालीन गीत-साहित्य से पृथक करता है। भाव-प्रवणता और आधुनिकता का जो संयोग माहेश्वर तिवारी के गीतों में उपलब्ध है, वह बहुत थोड़े गीतकारों में मिलता है। जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ, जिन्हें आज का बुद्धिजीवी उपेक्षित कर चुका है, कितने भावुक सन्दर्भ लिए है। नदी, तालाब, फूल, झरने, तिनके, हवा, तारीख, दिन, साँस, रूमाल, उजाला, धूप, कुहासा, कोलाहल, किनारा, दरवाजे, खिड़कियाँ, रेत, गाँव, घर, सीवान, धूल, ऊँगलियाँ, सड़क, अखबार, धुँआ, सभी हमारे लिए अति परिचित सन्दर्भ, स्थल अथवा संज्ञाएं हैं। परन्तु 'हरसिंगार कोई तो हो' इन साधारण परिस्थितियों का ही महाकाव्य है। इस संग्रह के अधिकांश गीत एक उदासी की तरलता लिए है। यह उदासी किसी एकान्तप्रिय विरही की उदासी नहीं वरन् असहाय व्यक्ति की उदासी है जो हर विश्वास को अत्यन्त व्यवस्थित रूप से तोड़े जाते देख रहा है। वह एक त्रासद स्थिति से खुद ही नहीं गुजर रहा बल्कि एक पूरे युग के उससे गुजरने का साक्षी भी है। आज की भागदौड़ की जिन्दगी में कुछ छूटता जा रहा है, कुछ कुचला जा रहा है। वह कुचला गया तन प्रकृति का है- यह अहसास माहेश्वर जी के गीतों में स्वभाविक रूपसे देखा जा सकता है।

अमरनाथ श्रीवास्तव :

अमरनाथ श्रीवास्तव का जन्म जून-1937 में उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद में हुआ था। वह नैनी (इलाहाबाद) में जी.ई.सी. नामक व्यावसायिक प्रतिष्ठान के लेखा-विभाग से

सम्बद्ध रहे हैं। आपकी रचनात्मक यात्रा 1960 से आरम्भ हुई थी और आज भी जारी है। आपकी कविताएँ हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन से भी आपकी रचनाओं का प्रसारण समय-समय पर होता रहा है। एक काव्य-संकलन भी प्रकाशनाधीन है।

अमरनाथ श्रीवास्तव कहते हैं - **''एक सही कविता व्यक्ति के अन्तलोक और उसके बाह्य परिवेश का साक्षी है। कविता इन्ही संदर्भो में रचनाकार को समानधर्मी देती है। वह रचना चाहे आर्थिक–राजनीतिक दबाव के कारण बने, रचनाकार के बाह्य संसार की हो, या मात्र आदमी होने के नाते उसके अपने निजी संसार की, लेकिन उसका कविता होना पहली शर्त है, इन दोनों सन्दर्भों में किसी अकवि को कवि होने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए, चाहे वह नयी कविता का कवि हो या गीतकार।...**

नवगीत और नयी कविता में शिल्प की भिन्नता होने के बावजूद कथ्य और उससे उत्पन्न लय में समानता है। नवगीत में ललित गीतों की अपेक्षा भाषा और छन्द का उबड–खाबड होना स्वाभाविक है और शिल्पगत खुरदरापन रचना को नयी चमक देता है। नवगीत का उत्सव मैं कबीर की 'उलटबांसी' का मानता हूँ, जो धर्म की आन्तरिक आवश्यकता और धर्म के नाम पर, बाह्यडम्बर के नाम पर जन्मती है।''[102]

सामाजिक विकृतियों एवं विसंगतियों तथा प्रदूषित राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अमरनाथ श्रीवास्तव अत्यधिक क्षुब्ध दिखाई पडते हैं, इनकी ये रचनाएँ इसका प्रस्तुत करते हैं -

''प्रत्यंचित भौहों के आगे
समझौते केवल समझौते।
भीतर चुभन सुई की,
बाहर सन्धि–पत्र पढ़ती मुस्कानें।
जिस पर मेरे हस्ताक्षर हैं,
कैसे हैं, ईश्वर ही जाने।
आँधी से आतंकित चेहरे
गर्दखोर रंगीन मुखौटे।''[103]

''पेड़ों की दुनियां है
जंगल की सत्ता
हर आहट भांप रहा है –
पत्ता–पत्ता
सूरज जब देता है
धूप के निवाले
हाथ बढ़ा देते
ऊँची फुनगी वाले
बौने पौधों पर है–
छांह का चकत्ता''[104]

कवि अपनी संवेदना को अत्यधिक गहराई के साथ प्रकट करने का प्रयत्न करता है जिसके कारण उसकी व्यक्तिगत अनुभूति और संवेदना सामान्य जन की समष्टिगत संवेदना और अनुभूति का रूप ले लेती है। निम्न नवगीत पंक्तियों में उनकी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति देखने लायक है –

''मेरी सीमा में है जिनको
मैं न कहूँ तो कौन कहेगा।
लहरों के अनुकूल रहा जो–
वह प्रतिमान बना देता है
यह प्रवाह निर्जीव देह को–
भी गतिमान बना देता है
उलटी धारा दिशा हमारी
मैं न बहूं तो कौन बहेगा।''[105]

उमाकान्त मालवीय :

जिस युग का रचनाकार समझौतों पर उतर आता है, सुविधाओं को खरीदने के लिए

कलम गिरवी रख देता है और मिथ्या अहम के विज्ञापन के लिए ओछे हथकण्डे अपनाता है, उस युग में अपनी गर्दन सीधी रखने वाला, स्वयं को विक्रय की वस्तु न बने देने वाला और सह रचनात्मक विश्वास के बल पर स्थापित होने वाला रचनाकार अपनी विशिष्टताओं के लिए प्रणम्य है। उमाकांत मालवीय ऐसे ही स्वाभिमान-सम्पन्न गीतकार थे। स्वर्गीय श्री उमाकांत जी उन चन्द रचनाकारों में से थे, जिन्होंने वर्तमान जीवन के अनैतिक दबावों तथा विपरीत परिवेश के मध्य संघर्षरत रहते हुए अपनी सृजनात्मक आस्था को बचाये एवम् बनाये रखा।

यों तो उमाकान्त जी ने खण्डकाव्य ललित निबन्ध एवं बालगीत भी लिखे हैं, किन्तु विशेश ख्याति उन्हें नवगीतकार के रूप में ही मिली है। आपकी रचनायात्रा तीन दशकों तक चली है जिसने आपको स्थापित नवगीतकारों की अग्रिम कतार में लाकर खड़ा कर दिया है। राजेन्द्र गौतम स्पष्ट रूप से कहते हैं - **''जीवन के प्रति एक निहायत ईमानदार व्यक्ति ही लम्बे समय तक नवगीत से जुड़ा रह सकता है , क्योंकि नवगीत स्वयं में मूल्यों, आदर्शों एवं नैतिकता का काव्य है। मूल्यहीनता, नैतिकता, सामाजिक विद्रूपता एवं मूखौटाधारी व्यवस्था के सीवनों को नवगीत ने प्रारम्भ से ही उधेड़ा है।''**[106]

मालवीय जी की नवगीतकार के रूप में पहचान उनके अपने आरम्भिक स्वतंत्र नवगीत संकलनों मेहंदी और महावर तथा सुबह रक्त पलाश की से ही हो जाती है जहाँ से उनकी नवगीत-यात्रा प्रारम्भ होती है। ''एक चावल नेह रींधा'' नवगीत संकलन उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार ''कविता -64'', ''पाँच जोड़ बांसुरी'', ''नवगीत दशक-1'' तथा ''नवगीत अर्द्धशती'' जैसे महत्वपूर्ण इतिहास सर्जक समवेत संकलनों में मालवीय जी की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

उमाकान्त मालवीय के अधिकांश गीत संवेदना के धरातल पर विभिन्न भावभूमियों पर स्थापित होकर भी एक समानता रखते हैं। वह समानता है, अपने-अपने सन्दर्भो में सामयिक रचनाधारा के बीच अपनी अलग शिल्पगत पहचान बनाने की। मालवीयजी का व्यक्तित्व सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न है और संस्कृति परम्परा के माध्यम से जीवित रहती है। उनके नवगीत का उत्कर्ष काल सन 1965 से 1975 ई. तक का है। उन्होंने यद्यपि स्वयं को प्रत्येक प्रकार की सैद्धान्तिकता से अप्रतिबद्ध माना है, परन्तु प्रत्येक सजग रचनाकार की भांति वे

मानव मूल्यों से प्राथमिक एवम् अंतिम रूप में प्रतिबद्ध थे, इसीलिए सामान्यजन की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति को उन्होंने अपना सर्वोपरि दायित्व समझा। इस दायित्व का निर्वाह उन्होंने आंदोलनकारी कवियों की भांति नारेबाजी के द्वारा नहीं किया है, वरन सामयिक भारतीय समाज जिस अनैतिकता के कुहासे में घिर गया था, शोषण की हिमशिला पर तडप रहा था, छद्म की घटादार अँधियारी में भटक गया था और दमन के खूनी पंजों में जकडता जा रहा था, उसका अनुभूति-सापेक्ष चित्रण नवगीतकार ने अपनी रचनाओं में किया है। कवि देखता है कि, सर्जनात्मक विश्वास का वास्तविक देय उपस्थित किया जा रहा है, प्रश्न से आहत अनिश्चितता हर ओर मंडरा रही है। कुछ कुहरों पर अंकित दस्तावेज विरासत में मिले हैं, व्यवस्थाओं ने हथकड़ी और बेड़ी ही दी है, अँखओं को पाला मारा गया है। ऐसी स्थिति में जीवन के स्वाभाविक परिवेश का विकृत हो जाना अवश्यमभावी है-

''कंधों पर सैकड़ों

सलीब लिए प्रश्न के

सूर्योदय होते हैं हारे-हारे थके

सौख गई स्वाति मेघ कुछ कृतघ्न सीपियां

बाँझिन हो गई किस नियोजन से क्रान्तियाँ

कुहरों की शिकने हैं, मस्तक पर घास के

उत्तर की तलबगार द्वार पर दस्तकें।''[107]

''मेहंदी और महावर'' वैयक्तिक उल्लास-क्षणों की श्रृंगार केन्द्रित अभिव्यक्ति होते हुए भी पूर्ववर्ती गीत तथा तत्कालीन हिन्दी-कविता की एक ढर्रे की अभिव्यक्ति से स्पष्ट भिन्नता रखता है। इस संकलन की शिल्पगत मौलिकता है- इसकी सहज किन्तु अनुकूल·सशक्त एवं सौन्दर्य मंडित भाषा, इन्द्रिय संवेध, संवेगमूलक प्रकृतिपरक बिम्ब-विधान भावनुसारिणीलयों की सृष्टि करने वाला पूर्णताग्राही छंदविधान तथा चमत्कार प्रदर्शन से रहित अप्रस्तुत-विधान। इन्हीं विशिष्टताओं के आधार पर इस संकलन को नवगीत के अन्तर्गत स्थान प्राप्त हो जाता है।

ओम प्रभाकर :

अगस्त 1941 में मध्यप्रदेश के भिण्ड जनपद में जन्मे डॉ. ओमनारायण अवस्थी (ओम प्रभाकर) ने एम. ए. करने के बाद हिन्दी में ही पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आरम्भ में मध्यप्रदेश शासन के शिक्षा विभाग में अध्यापन-कार्य से संलग्न रहे, तत्पश्चात शासकीय महाविद्यालय, भिण्ड में हिन्दी व्याख्याता के रूप में कार्यरत रहे।

ओम प्रभाकर का रचनाकाल 1960 से आरम्भ होता है। इनके प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थ- 'अज्ञेय का कथा-साहित्य (समीक्षा)', 'पुष्परचित (गीत संकलन)', 'एक परत उखड़ी माटी (कहानी संग्रह)', 'कंकाल राग (मुक्त छन्द की कविताओं का संग्रह)', 'कथाकृति मोहन राकेश (शोध समीक्षा)' हैं। अपनें नवगीत के प्रथम समवेत संकलन- 'कविता 64' तथा प्रथम अनियतकालीन काव्य-पत्रिका 'शब्द' का सम्पादन भी किया। आपकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रही है।

ओम प्रभाकर मानते है कि 'नवगीत' नयी कविता की प्रतिक्रिया नहीं है अतः स्पष्टतः वह नयी कविता का विरोधी भी नहीं। साहित्य विधाएँ परस्पर विरोधी होती ही नहीं। विरोध प्रवृत्तियों में होता है, न कि विधाओं में। कवि कहता है- **'एक बदली हुई काव्योचित लय, सहजता, जाथीत संस्कृति, भावोद्भूत और ताजगीपूर्ण बिम्ब-प्रतीक, टटकी भाषा, अभी तक अदृश्य और अस्पृश्य, नितान्त सद्यः प्रस्तुत दृश्य वास्तविक जीवन की गहन अनुभूतियां, युग संप्रक्ति और आज की विषमता व जटिलता से चटकते हुए व्यक्ति के लिए सांत्वनाप्रध, सहलाता हुआ आतिमक स्पर्श है।'**[108]

कवि की मान्यता है कि- नवगीत एक ऐसे विशिष्ट स्तर पर अवस्थित हैं जहां का शाश्वत और परिवर्तनशील रूप दोनों ही उनके अनुभव व्यास और अभिव्यक्ति-प्रक्रिया से एक साथ सहज ही आ जाते हैं। कवि के विचार से नवगीत आज के सम्पूर्ण जीवन के लघु-लक्ष्यों की कविता है। वह संगीत, लय, छन्द, तुक और ताल की समस्त पारम्परिक रूढ़ियों से मुक्त होता हुआ भी उनकी मन धारासे जुड़ा है। वह एक ऐसा काव्यरूप है जो वास्तविक रचना के आंतरिक अनुशासन से अनुशासित है।

ओम प्रभाकर के गीतों में गाँव की, खूश्बु, खेतों की हरियाली, विभिन्न प्राकृतिक कथ्यों, पंछियों, ग्रामीण लोक-संस्कृति, किसान, मजदूर और आम आदमी की दैनन्दिनी को बड़ी ही सहजता से आश्रय मिला है। अतीत की यादों में खोए हुए कवि को गाँव की स्मृति अनायास ही होने लगती है-

''डूब गया दिन
जब तक पहुंचे तेरे द्वारे।
एक धुंधलका छाया ओर-पास
धूप गाँव बाहर की छुट गयी
छप्पर बैठक सब बिलकुल उदास
पगडण्डी दरवाजे टूट गई
भारी था मन
हम थे काफी टूटे-हारे।''[109]

इसी तरह ये पंक्तियाँ भी देखें -

''यह पथ अब छोड़ दे !
खेत वही बंजर-सुनसान
रेत हुए ताल
भूखे प्यासे मकान
गिरते-गिरते अकाल
इनसे होकर जाता
यह रथ अब तोड़ दें।''[110]

सुधांशु उपाध्याय :

दिसम्बर 1951 ई. में उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद में जन्मे श्री सुंधाशु उपाध्याय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. करने के बाद कुछ दिनों तक अध्यापन कार्य से जुड़े रहे, तदनन्तर पत्रकारिता के व्यवसाय से संलग्न हो गए। आपकी रचनाओं का आरम्भ

लगभग 1970 ई. से हुआ और अब भी चलायमान है। आपकी कविताएँ कहानियां और निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आकाशवाणी से भी आपकी कई रचनाओं का प्रसारण हो चुका है। 'नवगीत' और 'नयी कविता' के स्वतंत्र संकलन भी प्रकाशित हो चुके हैं।

सुधांशु उपाध्याय मानते हैं कि **''आम आदमी के बदलते परिवेश, संकट, घुटन और पीड़ा के साथ होना कवि की सहज नियति है। अगर विवाद है तो कवि पर, कविता या गीत पर नहीं। नयी कविता का हल्ला जब कम हुआ तो नवगीत की नाजुक कलाई पकड़ने के लिए हड़कम्प मचा और नयी कविता के कई जीते-हारे योद्धा इधर भी लपके। ये न कविता के प्रति ईमानदार थे, न गीत के प्रति। लेकिन ढेरों ईमानदार लोग इन दोनों विधाओं में थे।''**[111]

कवि की रचनाओं में समकालीन परिवेश, पारम्परिक मूल्यों के परिवर्तन, मानवीय संवेदनाओं का एहसास, अतीत की सुखद यादों और भविष्य की चिन्ता यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। पारिवारिक संत्रस्त मनोव्यथा को कवि ने इन पंक्तियों में बडी सहजता से चित्रित किया है -

''दिन उनके अनुकूल हो गए।
हरसिंगार के सारे पौधे
रातोरात बबूल हो गए।
पेड़ों का उल्लास फट गया
घर-घर में भर गयी उदासी,
बूढ़ा पीपल रात कट गया,
ऐसी काली आंधी आयी
काले सारे फूल हो गये।
'अबकी आना, नथुनी लाना'
कलकत्ते में आकर मंगरू-
जोड़ रहे है दो दो आना,
सतरंगे आंखों के सपने
बाहर आकर धूल हो गए।''[112]

महा नगरीय संत्रास और आम आदमी की दयनीय मनोदशा का कवि ने बखूबी अपने गीतों में रेखांकित किया है -

''आंखो में है सैर-सपाटे,
हाथों में बबूल के कांटे।
महानगर को जानेवाले
लौटे नहीं अभी,
राजमार्ग पर रक्तचिन्ह हैं
ताजा पड़े हुए,
कैसे लोगं बदल जाते हैं
महज टोपियों से
नाटक नहीं देखते-सुनते
हम भी बड़े हुए
रह-रह करक रहे हैं भीतर
अपने ही उसूल के कांटे।''[113]

गुलाब सिंह :

बिगहनी, इलाहाबाद से जनवरी 1940 ई. में जन्मे श्री गुलाब सिंह नवगीत के एक स्थापित हस्ताक्षर हैं। उन्होंने इतिहास एवम् अर्थशास्त्र विषयों में स्नातकोत्तर की उपाधियां प्राप्त की तद्नन्तर उत्तरप्रदेश के शिक्षा, विभाग में इण्टर कालेज में इतिहास के प्रवक्ता के रूप में कार्यभार संभाला। उनकी रचनाओं का आरम्भ लगभग 1960 से होता है। सन् 1962 से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाओं का प्रकाशन होने लगा। 1975 में 'पानी के घेरे' नामक उपन्यास प्रकाश में आया तत्पश्चात दो काव्य-संग्रहों का प्रकाशन भी सामने आया।

गुलाब सिंह के गीतों में समकालीन सामयिक परिस्थितियों, खंडित हो रहे स्वप्नों एवम् समग्र क्रान्ति की ललक का यर्थाथ निरूपण दिखाई पड़ता है जो विभिन्न त्रासद स्थितियों को और भी प्रभावपूर्ण ढंग से हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है। युग की नकाबधारी स्थिति को चित्रित

करते हुए कवि लिखता है -

''शीशों के दिल दिमागवाली
महलों की महरिन-सी
झुग्गियां
बूटों बंदूको के पाँव ढ़के
अनुशासन पर्वो की लुंगियां
सपनों का एक स्वर्ग
सुलग रहा आँखो में
नाकों में निन्यान्वे नरक।''[114]

गुलाबसिंह के नवगीतों में गाँव के जीवन उसकी पुरानी पवित्रता, निश्छलता एवम् सादगी को बड़ी ही सहजता से रेखांकित किया गया है। ग्रामीण जीवन में धुल रहे विष और उससे उत्पन्न पीड़ा एवं कराह की आहट साफ सुनाई पड़ती है -

गांवों के फैले हाथों में
ज्वार बाजरा बांट कर,
धूप चढ़ रही फिर अंटो पर
सबसे कन्नी काटकर।
बप्पा सिर पर हाथ धरे हैं
माँ बैठी मन मारे।
टूटी छत के तले
भाइयों के / अंतिम बँटवारे।
घर के दिन सो गये
शाम की
सिली पिछौरी साट कर।''[115]

गुलाबसिंह का मानना है जनतांत्रिक व्यवस्था में जनता की जागरुकता एक अनिवार्य

जरूरत है। सहजता और संवेदनीयता के कारण नवगीत इस जरूरत को उचित समाधान दे सकता है। गुलाब सिंह लिखते हैं- ''इस घिराव और घुटन के बीच नवगीतकार का रचनाकर्म राजनीतिक सन्दर्भों से भी जुड़ गया है। इस प्रसंग में जो गीत, नारेबाजी के तहत या फतवे और उपदेश के रूप में लिखे गए हैं, वे 'नवगीत' की तस्वीर खंडित करते हैं लेकिन जो परिस्थिति से जूझने की छटपटाहट से निकले हैं,वे उसकी सार्थकता को प्रमाणित करते हैं। आज प्रकृति, संस्कृति, समाज राजनीति सभी कुछ नवगीत की रचनात्मकता से पूर्णतः संबद्ध है।'[116]

बुद्धिनाथ मिश्र :

मई 1949 में बिहार के दरभंगा जिले में जन्मे बुद्धिनाथ मिश्र ने बाल्यावस्ता से ही वाराणसी में रहकर संस्कृति की पारम्परिक परिपाटी के अनुसार विद्याध्ययन किया। नव्य पाणिनीय व्याकरण विषय से मध्यमा करने के बाद वे नवीन शिक्षा-पद्धति की ओर उन्मुख हुए। इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया। 'यथार्थवाद और हिन्दी नवगीत' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि भी उन्होंने प्राप्त की।

मिश्र जी की रचनाओं का प्रारम्भ सन 1965 से होता है। दैनिक पत्र 'आज', वाराणसी के सम्पादकीय विभाग में सहायक सम्पादक के रूप में नौ वर्ष तक कार्य करने के पश्चात 1981 ई. से यूनाइटेड कामर्शियल बैंक के प्रधान कार्यालय कलकत्ता में राजभाषा अधिकारी पद पर वे सेवारत रहे। कविता के अतिरिक्त वे कहानी, निबन्ध, रिपोर्ताज, तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के लेखनक्षेत्र से भी संलग्न रहे हैं। ''जाल फेंक रे मछेरे'' उनका प्रकाशित स्वतन्त्र गीत संग्रह है। उनके छुटपुट गीतों के प्रकाशन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर होते रहे हैं। लम्बे समय से उनके गीतों का प्रसारण आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से होता रहा है। उनके संगीत रूपकों एवम् वार्ताओ का भी प्रसारण आकाशवाणी से होता रहा है।

अपनी 'दृष्टि बोध' में बुद्धिनाथ मिश्र लिखते हैं- ''नवगीत ने पिछले तीन दशकों में उपेक्षा की कंटीली झाड़ियों और आलोचना की आंधियों के बीच जा संघर्षपूर्ण यात्रा की है,

उसकी अजेय आंतरिक ऊर्जा और दृढ़ आत्मविश्वास उसी का परिणाम है। नवगीत और नयी कविता का उद्‌भव लगभग एक सात हुआ। नयीं कविता अमर बेल की तरह नवगीत के हरसिंगार पर लतरती रही और उसके रस का शोषण कर अपना रंग दिखाती रही।.... लोग यह महसूस करने लगे हैं कि आम आदमी का नाम जपने वाली नयी कविता की आम आदमी के बीच कोई पहचान नहीं है और यह नवगीत ही है जो आधुनिक बोध-परक यथार्थवादी प्रवृत्तियों को छन्दों के सांचे में ढालने के कारण आज की मुख्य्य काव्यधारा बन सकता है।... गीत-धर्मिता केवल भारतीय लोक-जीवन की ही नहीं, मानव मात्र की एक सहजात प्रवृत्ति है। मातृरुपा प्रकृति अपनी संतानो में जिन पोषण रसों का संचार करती है, उसमें एक गीतधर्मिता भी है। सुख या दुःख की स्थिति प्रगाढ़ होने पर गा उठने की हमारी आदिम वृत्ति इस वैज्ञानिक युग में कवच की तरह उपादेय है। वह हमें आंतरिक स्तर पर यत्र होने से रोकती है। .... गीत की मूल विशेषता है- भावात्मक अनुभूतियों की अन्विति और उनका भाषा में सहज स्फोट तथा शब्दों की सांगीतिक एवं व्यंजनात्मक शक्ति की पहचान कराने वाला प्रयोग। नवगीत इन मूलभूत तत्वों को दाय रूप में पूरी निष्ठा से ग्रहण करता है।''[117]

बुद्धिनाथ मिश्र महानगर में रहते हुए भी अपने अतीत की यादों से कभी विमूख नहीं हो पाये। महानगर की त्रासदी कवि-मन को उद्वेलित और संत्रस्त करती रहती है, कदाचित इसी कारण कवि मन बीते हुए दिन को बिसारना नहीं चाहता है

''छूट गए दूर कहीं
इन्द्रधनुष नीड़ के
रेत-रेत दिखे जहां
जंगल थे चीड़ के
जुड़े हुए हाथ औ
असीस की तलाश में
थके हुए पाँव
बुझे चेहरे हैं भीड़ के
तैर रही तिनके-सी

पतवारे नाव की
काँप रहे लहरों पर
साये मस्तूल के।''[118]

* * *

''मैं वही हूँ, जिस जगह पहले कभी था
लोग कोसों दूर आगे बढ़ गए हैं
ज़िन्दगी यह-एक लड़की साँवली-सी
पाँव में जिसने दिए हैं बांध पत्थर
दौड़ पाया मैं कहां उनकी तरह ही
राजधानी से जूड़ी पगडंडियो पर
मैं समर्पित बीज-सा धरती गड़ा हूँ
लोग संसद के कंगूरे चढ़ गए हैं।''[118]

* * *

''एक बार और जाल फेंक रे मछेरे
जाने किस मछली में बंधने की चाह हो
सपनों की ओस
गूंथती कुश की नोक है
हर दर्पण मैं उभरा
एक दिवालोक है
रेत के घरौंदो में सीप के बसेरे,
इस अंधेरे में कैसे नेह का निबाह हो।''[119]

कुमार रवीन्द्र :-

लखनऊ में जून 1940 में जन्मे कुमार रवीन्द्र उर्फ रवीन्द्र कुमार रायजादा की प्रारम्भिक शिक्षा लखनऊ और हाथरस में हुई। फिर उच्च शिक्षाएँ लखनऊ में ही प्राप्त कर

डी.ए.वी. कॉलेज, हिसार में अंग्रेजी विषय के व्याख्याता के रूप में कार्यरत रहे।

1960 से इनकी रचनाओं का आरम्भ होता है। इन्होंने हिन्दी व अंग्रेजी दोनों में महत्वपूर्ण रचनाएँ की हैं। देश के लगभग सभी प्रमुख पत्रिकाओं-कल्पना, नया प्रतीक, सारिका, कादम्बिनी, धर्मयुग, गगनाचल आदि में इनकी रचनाओं का प्रकाशन हो चुका है। इनकी अंग्रेजी की कविताएँ भी, 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, यूथटाइम्स, स्काईलार्क' आदि के अतिरिक्त अन्तराष्ट्रीय पत्रिका 'पोयट' में प्रमुख रूप से प्रकाशित हो चुकी है और आज भी प्रकाशित होती रही है।

कुमार रवीन्द्र को साहित्यक्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी हासिल हुई है। 1976 में 'कादम्बिनी' द्वारा आयोजित 'अखिल भारतीय गीत एवम् काव्य प्रतियोगिता' में इनका गीत पुरस्कृत हुआ तथा 1978 में उनकी काव्य-रचना ''लौटा दो पगडंडियाँ'' के लिए उन्हें ''आशीर्वाद पुरस्कार से सम्मानित किया गया।''

कुमार रविन्द्र के गीतों में सामयिक सन्दर्भो की विस्तृत एवम् विशिष्ट समायोजना है। काल्पनिकता के आधार पर यथार्थ को स्थापित करने के यथेष्ट प्रयास उन्होंने किये हैं। इनके गीतोंका भावबोध के धरातल पर ही नहीं, शब्द और शिल्प के स्तर पर भी एक अलग भाव-व्यक्तित्व होता है। कुमार रवीन्द्र के अधिकांश स्वर सरल और सौम्य है, कठोर और व्यंग्यात्मक स्थितियां कवि मन के अनुकूल नहीं पड़ती-

''बूंद-भर जल ही बहुत
जो आंख को सागर करेगा
मेंह बन कर वही
सुखी-हुई नदियों को भरेगा
प्राण फूटेगा उसी क्षण चिता की
इस राख में
सुनो, सागर !''[120]

*** * ***

''खबर है
कि एक बूढ़ा हिरन आया है
अवध में
सुना, उसका बदन है
पूरा सुनहरी
और उसकी आंखो में हीरे जड़े हैं
साथ उसके एक साधू
देख जिसको
लोग अचरज में पड़े हैं
नये सपने
रक्षा-कुल के वही लाया है
अवध में''[121]

* * *

''लोग बड़े बावरे-
शोक उन्हें हुआ नया
जहरीले होने का,
फूलों की सांसो में रोज
नये नागों के दंश को
संजोने का''45

* * *

''खिड़की तक खुश्बू है
आंगन में
हरसिंगार फूला है
हम, तुम हैं साथ नहीं

जाने क्यों

वह पागल भूला है

यादों में महकी कस्तूरी है

तुम-बिन यह चांदनी अधूरी है।''[122]

रवीन्द्रजी के गीतों की भाषा बड़ी ही जीवन्त है। माधुर्य से ओत-प्रोत पंक्तियों में तद्भव और तत्सम शब्दों की लड़ियां बड़ी ही सहजता से गुंथी हुई हैं। प्राणोष्म बिंबों की अद्यतन अभिनव-सघन बुनावट बड़ी ही मनोहर है। 'डाह डार मृगछौनी धूप वाले उजले खरगोशों से दिन', 'नदी के जल में तिरती शामें'. 'गुनगुनी धूप में ओस को चबाती भेड़ों जैसी किरणें' आदि अनेक सुन्दर बिम्बों की योजना गीतों में चित्रात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि करती है। कुछ और बिम्ब प्रतीक व उपमान दृष्टवय हैं-

बिम्ब - **''नहा रही दूध से**

सूरज की धार॥''[123]

''ठूँठ कुछ बूढ़ी सुबह के सामने

दालान की है नींद टूटी, रास्ते सूने पड़े।''[124]

''साँझ बैठी है अकेली /गाँव के बीहड़ किनारे।''[125]

''मुरझाये फूलों को गिनते/हो गई अबेर

आंगन में टूट गिरी धूप की मुँडेर।''[126]

प्रतीक- **''रितुराजी सपने/गीतों के लेकर आखर''[126]**

''छूट गए राह में कहीं हरे-भरे द्वीप

अब तो है शेष/चिर-परिचित पतझरी कदम।''[127]

उपमान- **''किसी मध्ययुगी नायक -सा**

पीपल के तने में टिका

खड़ा हुआ भोर का गड़रिया।''[128]

रवीन्द्रजी के गीतों का शिल्पीय पक्ष भी भावपक्ष की तरह प्रौढ है। उनके गीतों में लोकगीतों की गन्ध के भी दर्शन होते है -

''अक्षत हों /ड्यौढ़ी

हैं नाज भरे कोठे

प्रौढ़ा घर-बाहर/सिंचे /नेह से बरोठे।''[129]

नवगीत में यथार्थ की स्थिति के स्वीकार पक्ष में उनके विचार हैं- **''यदि सामयिक सन्दर्भ मन में गीत स्थिति उत्पन्न कर दे तो वे स्वयमेव गीत बनकर उपस्थित हो जाएंगे।... साथ ही यथार्थ को कालहीन बनाकर ही गीत उसे स्वीकारता है।''[130]**

उजड़ते गाँव उनका मन विहवल कर देते हैं -

''सभ्यता के घाट पर / उलटी पड़ी है

रोशनी की नाव

लौट आए है सड़क पर / थके हारे पाँव

एक अनजाने सफर में रोज / हो रहे शामिल

उजड़ते गाँव।''[131]

कुमार रवीन्द्र के गीतों ने आधुनिकता को अनेक दृश्यों में, अनेक रूपों में रेखांकित किया है। अपनी बात को वे प्रकृति के बिम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से प्रभावी ढ़ंग से व्यक्त करते हैं। युगानुरूप व्यक्तित्व की सम्पन्नता से उनके गीत अलंकृत है। जीवन की विसंगतियों के बीच भी कवि ने आस्था के स्वरों को छोड़ा नहीं है। आज के व्यक्ति को, नोंच लेने हेतु संनद्ध नुकीले पंजो वाले परिवेश ने उनके गीतों में वाणी पाई है। उन्हें लगता है, शहराते आँगन की दहलीजें खंडित होती जा रही है, रिश्तों का विक्रय कर जरूरतें पूरी की जा रही है। शहर मीलों का नगर बन गया है। सरकारी सूरजो ने आपस में अँधियारों का बाँट कर धूप की ऊँगलियों को घायल कर दिया है। इस प्रकार अर्वाचीन युग की विसंगतियों भरी अनेक यथार्थ स्थितियाँ कुमार रवीन्द्र के गीतों में उजागर हुई है।

रवीन्द्रजी के गीतों की पृथक पहचान और ताजगी उन्हें वैशिष्टपूर्ण व्यक्तित्वधारी सिद्ध करती है। नवगीत के अनेक पहलू उजागर करने वाले रवीन्द्र जी श्रेष्ठ नवगीतकारों की श्रेणी में आते हैं।

कुमार शिव :

कुमार शिव अर्थात शिवकुमार शर्मा का जन्म सितम्बर 1945 में कोटा, राजस्थान में हुआ था। बी.कॉम, एम.ए. और एल.एल.बी. करने के बाद वकालत करने लगे। अपनी रचनाओं का आरम्भ उन्होंने 1965 से किया था जो अब भी प्रवाहमान है। उनके प्रमुख प्रकाशन ''शंख... रेत के चेहरे'' (गीत संग्रह 1973), ''पंख धूप के'' (गजलें एवं दोहे 1977) हैं। इनकी अनेक रचनाएँ समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। कुमार शिव 'नवगीत' को 'भीड़' और 'सूनेपन की ईमानदार अभिव्यक्ति' मानते हैं जो कल्पना के पंख लगाकर, हवा में नहीं उड़ता, बल्कि नंगे पाँव धूप तपी चट्टानों, रेतों पर चलता है और जन-सामान्य बोलचाल के शब्दों में परिवेश को अभिव्यक्त करता है। वे लिखते हैं- **''आत्माभिव्यक्ति, लय और गेयता की रंगीन रेखाएँ नये से नये प्रथीकों में बंध कर जीवन के तपते धरातल पर एक इन्द्रधनुष को जन्म देती है और इसीका नाम है 'नवगीत'।''**[132]

कुमार शिव के नवगीतों में सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं, आक्रोश, पारिवारिक समस्याओं अतीत की यादों और वर्तमान परिस्थितियों का सहज एवं यथार्थचित्रांकन दिखाई पड़ता है। वर्तमान स्थितियों में मानवीय सम्बन्ध कितने दयनीय हो चुके हैं, इसका निरूपण निम्न गीत-पंक्तियों में देखा जा सकता है -

''कात रहे हम दिन कपास से।
नाच रहे हम
तकली जैसे,
बज उठते हैं
ढपली जैसे,

हंसते हैं पर हैं उदास से।

लिए पुस्तिका

प्रविाचों की,

जिल्द बंधी है

अवसादों की;

कटे हुए हैं आस-पास से।

मित्रों ने

उपकार किया है,

नागफनी-सा

प्यार दिया है,

सब खाली बोतल-गिलास-से।''[133]

कुमार शिव नवगीत दशक-2 में प्रस्तुत अपने दृष्टिबोध में लिखते हैं - **''गीत लिखना मेरे लिए विवशता है। गीत एक विशेष मनःस्थिति का देन होता है। कई बार गीत पूर्ण करके भी संतुष्टि नहीं मिली है जैसे जो कुछ कहा जाना था, शब्द उन्हें पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं कर सके।''[134]**

वह मानते हैं कि, छन्द मैं बंधकर गीत आज की जीवनशैली को ईमानदारी से अभिव्यक्त कर रहा है। गीत का दर्पण इतना चमकदार व संवेदनशील है कि, परिवेश का कोई भी अक्स इससे बचा नहीं रह सका है।

दिनेश सिंह

नवगीत के प्रमुख हस्ताक्षरों में दिनेशसिंह का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। 14 सितम्बर 1947 में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले में उदित दिनेशसिंह 1965 से आज तक गीतों से अनवरत जुड़े रहे हैं। अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'नया प्रतीक' में उनकी प्रथम कविता प्रकाशित हुई। तत्पश्चात धर्मयुग, मधुमती, वागर्थ, आदि अन्य पत्रिकाओं में उनके गीत प्रकाशित होने लगे। डॉ. शंभुनाथसिंह ने 'नवगीत दशक-3' में उनके गीतों को शामिल किया।

उनका प्रथम काव्यसंग्रह 'पूर्वाभास' 1975 में प्रकाशित हुआ था. प्रतिष्ठित त्रैमासिक पत्रिका 'नये पुराने' का 1977 से सम्पादन करते हुए उन्होंने गीत-रचना के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किये हैं, तथा प्रसिद्धि हासिल की है।

नवगीत-रचना के सम्बन्ध में दिनेश सिंह लिखते हैं- **''आधुनिक गीत या नवगीत काव्य की विलुप्त 'सटीक लय' की खोज का परिणाम है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के संधातों में अनुभूतियों के क्षण-क्षण बदलते स्वरूप को गीत सहज ही ग्रहण करते चलते हैं जबकि गीतेतर कविता में यह परिवर्तन बहुत बाद में महसूस किया जाता है और तब उसकी जड़ता को किसी नये आन्दोलन से तोड़ना होता है। नयी कविता कि पिट्टी तेवर बाजी, एक ही तर्ज में अरसे से एक-सी बोली जाने वाली भाषा, आधुनिकता की जिस जड़ता का रचाव कर रही है, उसे तोड़ते हैं ये नये गीत इनकी तरलता में धार है, इनकी सघनता में वजन और मार में तो क्षेप्यास्त्र हैं ही। .... प्रेषणीयता, बोधगम्यता के सात ङी संवेदना की आंतरिक तरलता इन गीतों की विशिष्टता और वैभव है... नवगीत का संसार पूर्ण संवेदना का संसार है। भावना में रसे-पके गीतों का रिश्ता अधिक अर्थों में आदमी के दुःख दर्द, उसकी निराशा-हताशा से होता है। इसीलिए नवगीत बाहर से सौन्दर्य-प्रेमी नहीं लगते है। पर उनमें जो सौन्दर्य है, वह रूपवाद के दुराग्रह से प्रेरित न होकर स्थितियों का सूक्ष्म अभिनव सौन्दर्य है। .... नवगीत इतना संवेदशील है कि, वह मौसम के किसी तात्कालिक परिवर्तन के प्रभावी क्षण को अपनी लय में तुरन्त ग्रहम कर लेता है।''**[135]

दिनेश सिंह ने अपने गीतों में अधिकतर सामाजिक परिवेश का चित्रण किया है। कवि के लिए गीत-रचना एक सुखद अनुभव है। कवि ने इस बात की कटु आलोचना की है कि, ''जटिल स्थितियों की अभिव्यक्ति मेंगीत असमर्थ हो जाते हैं या कमजोर पड़ जाते हैं।''61 कवि 'नवगीत' को जटिल से जटिलतम परिस्थितियों की अभिव्यक्ति व सशक्त माध्यम मानता है। चोह वह ग्राम्य जीवन से सशक्त माध्यम मानता है। चाहे वह ग्राम्य जीवन से संबधित हो या फिर शहर के संत्रास भरी जिन्दगी की अभिव्यक्ति हो। कवि की एक गीत रचना देखें....

''अनगिनत टुकड़ों में उछलती है
धड़कती जिन्दगी

खुद से भड़कती जिन्दगी।
घुर सड़क में, बाजार में,
घर में, पिया के प्यार में,
हर जगह उलझी हुई,
कारोबार मैं, व्यापार में,
भीतर अकेली गुम
कि मेले में फड़कती जिन्दगी
खुद से भड़कती जिन्दगी।''[136]

दिनेशसिंह के गीतों में मनुष्य और समाज की विभिन्न समस्याओं को यथासंभव अभिव्यक्ति मिली है। व्यक्तिगत गीत के स्थान पर नवगीत में सामाजिक त्रास का स्वर मुखर हुआ है-

''दुखिया घर से बाजार चली है
नंगे पाँव जवानी में,
राहों में खरे बबूल देखते
आग लगे पर धानी में।
आंगन में रोटी के दो टुकड़े
नन्ही–नरम हथेली में,
आपस में उलझे
दो भोले चेहरों की
ले ली– ले – ली में,
दारू की धुन में पिया पुकारें
बोतल ढरकी बानी में।''[137]

रवीन्द्र भ्रमर :

नवगीत के प्रति अड़िग आस्था रखते हुए भ्रमर जी के गीतों में आधुनिक भावबोध और

परम्पराप्रियता का मणिकांचन योग है। **"उनके दो नवगीत संग्रह 'रवीन्द्र भ्रमर के गीत' और 'सोन मछरी मन बसी' के नवगीतों की आत्मिक चेतना में वर्तमान स्थिति की संगीत के तार अनस्यूत हैं। उनके गीतों में अनुभूति के साथ साथ विचारों और समस्याओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता विद्यमान है। शैली की नवीनता अनुभूति की ताजगी, सौन्दर्य और प्रीति के रागतत्व से सरोबार भ्रमर के संग्रह रचनात्मक सार्थकता एवं कवि की चेतना के सहज स्पन्दन है। छायावादी अर्थ संकोच की अपेक्षा विविध मुखी रचनाओं में विद्यमान विषय का स्फीत धरातल उनके गीतों की पूर्णतः उजागर करता है। उनके गीतों की विशिष्टता है– व्यक्तिनिष्ठा, सामाजिक चेतनानुभूतिमय रागात्मकता, मुक्त छंदप्रियदता के साथ बौद्धिक निष्पति का अदभूत मणिकांचन योग।"**[138]

हृदयस्थित सुख-दुखात्मक भावानुभूतियों को वे लोकजीवन की लोकगन्धी चेतनासिक्त ग्राम गीतों से प्रेरणा लेकर गीत में उतारते हैं यथा -

"मैं बनाऊँ घर इसी मझधार में,
अगम जल की सोन मछरी मन बसी।"[139]

युग जीवन की विषाक्त परिस्थितियों के चित्रांकन के समय कवि भाषा का स्वरूप बदल जाता है। अक्षम्य आक्रोश भी जब गीत धरा पर उतरता है तो संयत भाषा का चोला पहनकर उतरता है।

"दले हुए फूलों से स्वप्न, बिखर जाएंगे
अमलतास के पीछे गुच्छे झर जाएंगे
लौट नहीं आएँगे/फिर ये पहर बासंती
छूटो मत/ क्षण मेरे / मुझसे मत छुटो।"[139]

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर नवगीतों में लोकगीत की अतंश्चेतना आत्मसात करने पर बलदेते हुए कहते हैं - **"नए गीत कवियों ने छायावाद के बँधे हुए बासी शिल्प से मुक्ति पाने के लिए इस प्राकृतिक भावधारा का अनुशीलन किया है। नए गीतों में लोक प्रचलित ग्राम गीतों की**

अनेक विशिष्टताओं को समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है। केवल भाषा, छन्द और अभिव्यक्ति की सादगी नहीं, वरन् ताजे बिम्ब और टटकी अनुभूतियों को भी लोकगीतों के माध्यम से ग्रहण करने की चेष्टा की गई है। नए कवियों ने बार-बार महसूस किया है कि लोकगीतो लोकमानस से सुख-दुःख की वाणी होने के कारण लोकचेतना का सीधा संस्पर्श करते हैं। अस्तु नए गीतों को अधिक प्रभावशाली तथा व्यंजनापूर्ण बनाने केलिए लोकगीतों की मूल अंतवर्ती चेतना को आत्मसात कर लेना चाहिए।''[140]

''धीरे धीरे स्वर उठाओ/कोई तार
टूटे ना प्रीत बंसरी अमील /
पोर-पोर रिसे बोल
गीत हौले हौले गाओ /कोई छन्द छूटे ना।
राग रंग रंगे गात/नैन ओट सारी बात
प्यार पलकों में छिपाओं/ कोई भेद फूटे ना।''[141]

वर्तमान त्रासद जीवन की श्वापग्रस्त स्थितियों की देन कुण्ठा, टूटन, घूटन, संत्रास का उनके गीतों में लवलेष नहीं है। उनके गीतों में प्रबल जिजीविषा, मस्ती, उल्लास, उत्साह के फव्वारे फूटते रहते हैं -

''तान दिए चन्दवे हरियाली के
केसर से भर दीं रस क्यारियां
गुच्छों में झुला दिए फूल
मधुवासित कर दी फुलवारियाँ
सपने लौटे हैं/ वनमाली के।''[142]

तथा -

''तुमको पाकर जुड़ा गए हैं प्रान
मरुथल में गूंजे है निर्झर गान
कातिक की क्वाँरी लजवंती धूप

नयन सफल है निरख तुम्हारा रूप
तुम तो जैसे जुग-जुग की पहचान
फागुन में सहजन सिरीस कचनार
महमह चारों ओर तुम्हारा प्यार
घर आंगन में कोकिल कंठी तान।''[143]

वस्तुवादी सैद्धान्तिक पक्षों की व्यंजना भी भ्रमर मनोहरता से करते हैं उनमें शुष्कता की हल्की झांई भी नहीं पड़ती ''उनका प्रथम गीत 'पंछी' मैं गाने का गुन'' है गीत के जन्म रहस्य की पर्ते खोलता, करुणा को अर्थात वंशी के रोदन को इसका प्रमुख कारण स्वीकार करना है। पूरे गीत में यह सैद्धांतिक बात बड़ी सहजता से मोहक अंदाज में कही गई है। उनका विश्वास है- सारी उथल-पुथल के बीच नवगीत सृजन की साहित्यिक धारा अपना पथ निर्मित करती रही है। भ्रमर विरोधियों की निस्सार दलीलों से निश्चित।

''मानव-मन की गानवृत्ति के सरल सहज कृती है उन्होंने जो कुछ गाया है वह गीत रचना के क्षेत्र में उल्लेख्य है। प्रेम की पीर के वे भुक्तभोगी गायक है तथा सौंदर्य एिका के शलम-ज्वलित स्वरकार है। प्रेम में विरह है, समर्पण है, दान है, जन्म-जन्मान्तर का नाता है, प्रेम भोग मात्र नहीं है, न ही वासना-जन्य क्षणिक आवेश का नश्वर परिणाम उनकी सौंदर्य भावना में उदाता है। भ्रमर की प्रिया के मानवी सौंदर्य में दिव्यता के स्फुलिंग हैं तो उनकी प्रकृति में मानवी सौंदर्य की सजीवता के संचरण मिलते हैं।''[144]

भ्रमर जी ने उर्दू काव्य से भी प्रेरणा ग्रहण की है। उर्दू का लहजा लिए एक गीत की पंक्तियाँ पेश हैं -

''चश्मे साकी की कसम/ जो मैकदे की जान है
पी रहे है, तो समझ लें/ क्या है नौशीने
का दर्द जिंदगी जीने का दर्द।''[145]

प्रेम की टीस, कसक, मिलनेच्छा, उपास्यभाव के विविध चित्र उनके गीतों में बिखरे हुए हैं। वे कहते हैं -

"एक पुरानी छत के नीचे
हम–तुम मिले बहुत दिन बाद
दूर कहीं गूँजी शहनाई
बरबस गौने की सुध आई
खिरकी पर थिरकी पुरवाई
पर्दे हिले बहुत दिन बाद।"[145]

आगे वे कहते हैं –

"आज सारे दिन बिना मौसम
घनी बदली रही है,
सहन–आँगन में तुम्हारे
प्यार की नदिया बही है,
सुबह उठकर
नाम जो ले लिया मैने
आज का यह दिन
तुम्हें दे दिया मैंने।"[146]

* * *

"उनकी आँखें, मेरे सपने,
चुनमुन चिड़िया नीड़ द्वार से
छिन झांके, छिन उड़े प्यार से,
तनिक पंख छू जाए
फूल की टहनी लगे डोलने–कँपने।
उनकी आँखे, मेरे सपने।"[147]

* * *

"तोड़ो मौन की दीवार।

देखने दो मुझे अपने हृदय के उस पार।
ये बहुत खामोश कुम्हलाई हुई आँखे।
शिबिल संध्या नीड़,
श्यामा खगी की पांखे
कह रही तुम कहीं आयें–
दाँव कोई हार।''[148]

* * *

''चलो, नदी के साथ चलें,
नदी वत्सला है, सुजला है,
इसकी धारा में अतीत का दर्प पला है,
वर्तमान से छनकर,
यह भविष्य–पथ गढ़ती
इसका हाथ गहें, युग की जय यात्रा पर
निकले॥''[149]

* * *

''बच्चे जैसा मन
कैसे बहलाऊँ?
परिवर्तन की चाह
छाँट ज्यों फैली,
नयी नवेली गुड़िया
छिन में मैली,
कितनी गुड़ियों से
घर–बार सजाऊँ?''[150]

भ्रमरजी के गीत अपने आप में बेजोड़ है। इनके प्रणय में दित्सा भी है पाने की चाह

भी। प्रेम की उन्मुक्त गलियों में बसेरा करते भ्रमर जी बड़े ही निश्छल और स्वाभाविक लगते हैं। उनके वर्ण्य की तरह शिल्प भी सहजता के आवरण में वैशिष्ट्यपूर्ण है। शहरी जीवन की औपचारिकता और ग्राम जीवन की झांकी उनके गीतों में प्रस्तुत हुई है। उनके गीतों में परम्परा और आधुनिकता की झलक विद्यमान है। नए छन्दसिक्त कलेवर में ढले गीत, दैनिक जीवन की अनुभूतियों की प्रतीति हेतु चतुर्द्रिक व्याप्त बिंब और प्रतीकों का अवलंब लेते हैं इसलिए जीवन से ज्यादा जुड़े लगेत हैं। रचना शिल्प के धरातल पर शुक्लजी के मतानुसार- वे अधुनातन गीत स्वरों की परम्परागत शिल्प की कसौटियों पर कसना औचित्यहीन मानते हैं। अनुभूतियों की प्राणवान अभिव्यक्ति हेतु वे तुक निर्वाह के विश्वासी नहीं है। गीत-संक्षिप्त होने के कारण, सघन जीवानुभूति समेटे, संश्लिष्ट अर्थ वहन किए, साहित्य के सजग प्रवासी प्रतीत होते हैं। वर्तमान की अर्थवत्ता ध्वनित करने के लिए टटके अप्रस्तुत, सशक्त प्रतीक तथा अलंकरण निर्वाह इतस्ततः बिखरे जीवन की लड़ियों से गीतों में पिरोए गए हैं। छन्दगत सादगी स्वयं ही गीतों का श्रृंगार बन गई है। आत्मचेतना लोकचेतना का निर्विरोध स्पर्श करती, उनके गीतों को अर्थगांभीर्य से संयुक्त कर, भाषा में मिठास का संयोजन करती है। क्षण-क्षण की नव-अनुभूतियां नवोन्मेषशालिनी शिल्पिक प्रतिभा का संयोग पाकर विलक्षण बन गई है। उदाहरण स्वरूप कुछ बिंब, प्रतीक व उपमान -

''मधुर गंध / मन की हर एक गली महक गई
सुखद परस / रग रग में चिनगी सी दहक गई
रोम रोम उग आए साधों के शूल।''[151]

*** * ***

''गेहूँ के गोरे गात/ बन-टेसू की मेंहदी भीगी /
धरती काअहिवात वासंती के अंग-अंग /
सावन-भादों की सुधि सरस गई।''[152]

*** * ***

''बड़ी-बड़ी हिरना आँखों में / भरे साँवरिया श्याम

सपनों के सावन झूले पर / होती उम्र तमाम
नागफनी सी / सुधियाँ तन को
आत्मा को है अनगिन क्लेश।''[153]

इस प्रकार के सुन्दर शिल्प सम्बन्धी अवयवों से भ्रमरजी का काव्य-वैभव अलंकृत है। सहजता से विशेष बात कानों में कह जाने वाले भ्रमर गीतों में आधुनिक चेतना के भी समावेशक है-

''फूलों से खुश्बू भी गायब/ऐसा अक्सर लगता है
साजिश है ये जिस मौसम की अब उससे डर लगता है
उसके छूते ही / महेनत की पूंजी गुम हो जाती है
होगा वह कोई सौदागर / पर जादूगर लगता है
धूप-धुला उजला सा / अन्दर का मन काला है
झाँक के देखा आँख में उसकी / आधा अजगर लगता है।''[154]

वर्तमान जीवन की सच्चाई उपर्युक्त गीत में प्रतिकात्मक शैली में किस खूबी से उतरी है। रवीन्द्र भ्रमर के गीत संकलन के संबंध में प्रकाशक का मत समर्थनीय है - **''सौन्दर्य और प्रीति के रंग में डूबे हुए इन गीतों में आकर्षण और मिठास है इनमें गीति काव्य के श्रेष्ठ तत्वों के दर्शन तो होते ही हैं साथ ही ऐसा जान पड़ता है कि इनका कवि नए प्रयोगों के प्रति सतर्क हो रहा है।''[155]**

नयी कविता की प्रकृति के अनुकूल 'रवीन्द्र भ्रमर के गीत' संकलन की कविताओं को माना जा सकता है। भ्रमरजी ने प्रेम को असामाजिक प्रवृत्ति नहीं माना है। इसीलिए उसे रहस्य में रखने की आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। वे उन्मुक्त और सहज अभिव्यक्ति को महत्व देते हैं। आधुनिक कवि की भांति भाषा, छन्द और अभिव्यक्ति की सादगी के सिवा ताजे बिम्बों और टटकी अनुभूतियों को लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास कवि ने किया है। वह इस बात को स्वीकार नहीं करता कि युग की कुंठा और संघर्ष ने मानव मन की मानवृत्ति का दमन कर दिया है। वह भावात्मक क्षण की अनुभूति को स्वर देता है, भले ही उसके गीत छोटे

होते हैं। नवीन बिम्बों की प्रस्तुत गीत में एक वानगीं है-

''आज चांद को, गल जाने दो
आज जाग लूँ सारी रैन।
तरल जु-हैया की तरुनाई
तन से रिस प्राणों तक आई
आज अकेलापन डसता है
आज नहीं है जी को चैन।
सोया घर आँगन है सूना
दिन का दुख लगता है दूना
सन्नाटे को बेध रहे है
निर्मोही के बंसी बैन।''[156]

रवीन्द्र भ्रमर के गीतों में देशभक्ति के स्वर भी गुंजित हुए हैं-

''शान्ति-क्रान्ति के गीतमय चरन
छूने को है नया लक्ष्य घन
नवयुग का नायक
हिमगिरी के उच्च शिखर पर
फूंक रहा निर्माणों की वंशी में नव स्वर
गूँज उठ रही जन-जन मन मुखरित
मातृभूमि का कन-कन
थिरक रहा भारत का आँगन
नए पर्व का नया समीरन।''[157]

रवीन्द्र भ्रमर के गीतों में प्रेम के बदलते मूल्यों का -

''नित्य नई गंधों बस जानेकी आकुलता
मन को किन फूलों आराधें

ज्वार नहीं थमते
जलयान हो रहे डगमग
किसी भँवर में
डूब न जाए यह सारा जग
इच्छाओं के बोझ पहाड़ लग रहे तन को
मन को किन पलरों पर साधें
मन को किन सीमाओं बांधे।''[158]

प्रसादी के नारी के प्रति विस्मय भाव का साम्य रवीन्द्र भ्रमर की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है-

''चाँदनी के पंख-सी
उजली धुली तुम कौन ?
तुम्हें तिरते बादलों के बीच देखा है।''[159]

* * *

''सुन तो मैं, कही-अपनी पीर मुझसे कहो
बह सको तो बही मेरी चेतना में बहो
मैं करुं हलका-
तुम्हारे दुख का दुख भार
झाँकने दो वक्ष मुझे अपने हृदय के उस पार
तोड़ो मौन की दीवार।''[160]

* * *

''तुमको पाकर जुड़ा गए है प्रान।
मरुथल में गूँजे हैं निर्झर गान
सावन में मन भावन रिमझिम मेह
हर छन नेह तुम्हारा शीतल देह

जीवन विलसित ज्यों हरियाले धानों॥''[161]

*** * ***

''शीशे में परछाई उगती

तुम प्राणों के बीच उगे हो

प्राण बसे हैं देह–गेह में

तुम अपने हो बहुत सगे हो

ऊपर के पर्दे उतार दो। मुझ छाया

को अंक लगा लो बाहर की परिकरमा

करते / मेरे पांव थक गए हारे।''[162]

राजेन्द्र गौतम :

आधुनिकता और परम्परा के छोरो को सहलाते-नहलाते राजेन्द्रजी के गीत जादुई संगीत की सिहरन छिपाये रहते हैं। 'गीत पर्व आया है' (1983) इस प्रथम गीतसंग्रह के माध्यम से राजेन्द्र गौतम ने अपनी अलग पहचान बनाई है। बौद्धिकता को तोलता हुआ उनका रचना संसार कथ्य व शिल्प के आधार पर मौलिकता लिए है। जीवन के अनुभवों को से साक्षात्कार करता, गहरी आत्मीयता से संपृक्त गीत रचना कवि इस संग्रह में कहता है -

''फूल से महके दिन सलीबों पर टंगे हैं''

''गौतम जी की सलीबो पर टिंगे है दिन ''**की गीतात्मक पंक्तियों में अभिव्यक्ति की छटपटाहट निजी न होकर सामूहिक है। रचनाकार का अनुभव सामूहिक चिंताों और संघर्षो से जुड़ा हुआ है। मलय की गंध में इसीलिए रचनाकार जगह–जगह संकल्पों के साथ खड़ा दिखाई देता है। प्रकृति से लेखक की गहरी रागात्मकता है।''[163]**

राजेन्द्र गौतम कहते हैं- ''**नवगीत आधुनिकता का ध्वजवाहक भी है और परम्परा का पोषक भी। उसमें निर्लक्ष्य भटकन नहीं है और न उसे क्षणजीवी चमत्कारिता ही कभी**

स्वीकार्य रही है। नवगीत में ग्राम, नगर, महानगरादि के स्तर पर चेतना का विभाजन नहीं है। उसने जीवन को उसकी समग्रता में ग्रहण कर वाणी दी है। मानवानुभवों की कोई सीमा नहीं है। स्थिति और परिवेश इस वैविध्य के लिए उत्तरदायी है। अपने युग और परिवेश के अनरुप ही नवगीत में उपलब्ध है तो साथ ही इसमें इन समस्त विभीषिकाओं के बीच, आस्थावान सर्जक का स्वर भी मुखरित हुआ है। आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक शोषण की मुखौटाधारी विसंगतियों पर यदि इसमें तीखी चोट है तो प्रकृति का सहज सौन्दर्य और पारिवारिक स्नेह की उत्फुल्लता भी इसके प्रतिपाद्य के अंग हैं।''[164]

उनके एक गीत का अंश प्रस्तुत है -

''अँधियारे सब
गलियारे हैं
दीपित लेख नहीं कोई
कीच भरी धंसती आंखो-सी
टपक रहीं हैं खपरैलें
मन के सब विश्वास डुबाए
फैले जोहड़ मटमैले
आश्वासन का
दूर-दूर तक
अब आलेख नहीं कोई।''[165]

इनके गीतों में सामाजिक यर्थाथ का चित्रण प्रमुख रूप से उभरा है -

''सड़कों से है लगातार
सठता जंगल का शोर
ऋचा नहीं यह
है शहरों का...
छन्दहीन इतिहास

गूँगे हुए यहाँ आकार

मन के सारे सीमान्त।''[166]

अपने संकलन 'गीत पर्व आया है' में वे आधुनिक दबावों की आंतरिक निजता से महसूस करते है। सामयिक बोध की पकड़ उनके नवगीतों की विशेषता है। कवि अनुभव करता है कि, आज समाज में व्यक्ति,धूप से दहके हुए दिन व निर्वास-यात्रा सी दुखकर स्थितियाँ ढो रहे हैं। जिन्हें रक्षक समझ सरहद सौंपी, वे ही भक्षक बन कर गाँव लूट रहें हैं। युगपति, अच्छे-बुरे से बंखबर सोया हुआ है। शकुनि छल भरे इतिहास का पुनर्निमाण कर रहे हैं। नित्य की दुर्घटनाओं से जंगल आतंकित हैं। मौसम आखेटक है दिशाएँ बेधित हैं। बूढ़ी बस्ती की हड्डियाँ चरमरा रही हैं। जंगल, नगर और घर का अन्तर मिट गया है क्योंकि सभी जगह मुर्दनी, आतंक समाया है। परम्पराओं का वटवृक्ष कट चुका है। संशय के मँडराते प्रेत सभी की गर्दनें कस रहे हैं। हम और बौने हो रहे हैं। विश्वास का क्षीण सूत्र भी नहीं है। हम बारूद की दुर्गन्ध जी रहे हैं, प्रलय की प्रतीक्षा करते हुए। लाशें सड़कों पर लावारिश सड़ रही है। अजनबीपन की गन्ध ने सभी को घेरे में ले रखा है। फूल से महके दिन सलीबों पर टँग गए हैं। इस प्रकार समाज के विभिन्न स्तरों की यथार्थानुपेक्षी स्थितियां गौतमजी की नवगीत पंक्तियों में उतारी गई हैं। एक गीतांश दृष्टव्य है -

''अखबार है– यह

याकि नंगा तार बिजली का

पूरा शहर ही मर गया

घुट स्याह नफरत के धुँए से

यों लिखा है

मुखपृष्ठ से चलकर गई

परिशिष्ट तक

इन अग्निकांडों की कथा है

फिर जल गया दामन

किसी लाचार तितली का।''[167]

अखबार की खबरों में नैतिक मूलयों के पतन की झाँकी कवि के हृदय में विष का सागर लहरा देती है। सामाजिक व राजनैतिक दुरभिसंधियों के परिणाम स्वरूप मूल्य-हनन, पथराएँ सम्बन्ध, विवशता खण्डित मनःस्थिति, संघर्ष, उदासी की त्रासद स्थितियां जन्म लेती हैं और इन कटुताओं की छाया नवगीत पर पड़े बिना कैसे रह सकती है? इस तरह की कटुता भरी स्थितियाँ गौतमजी के नवगीत दर्पण में आधंत, कौशल्य से परावर्तित की गई हैं। राजेन्द्र गौतम का शिल्प पक्ष भी सशक्त है। मनोहारी बिम्ब, सार्थक, प्रतीक और उपमान उनके गीतों की श्रीवृद्धि करते हैं-

बिम्ब - **''दिवस हाँफता है निदाध का**
शुष्क झील के सूने तट पर।''[168]

- **''सूर्यमुखी / गीतों की / गुमसुम है पदचापें**
शिथिल पवन / पंखों पर / तिरती बोझिल सांसे।''[169]

प्रतीक - **''ध्वस्त सभी ज्योति दुर्ग**
विजित किरण - सेनाएँ।''[170]

उपमान - **''कर्ण कुहरों के समय के**
शोर शीशे-सा ढला।''[171]

- ''कागज की नावों-सी/जल-पंखी रागिनियाँ।''[172]

- ''आदमी ने /भूल से / अंगार से दह के समय
को भोम के हाथों छुआ है।''[173]

राजेन्द्रजी की भाषा भावानुगामिनी है। तत्सम और तद्भव शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग किया है।

अनूप 'अशेष'

मध्यप्रदेश के सतना जनपद में अप्रैल 1945 में जन्म लिए अनूप अशेष आद्योपान्त जमीन से जुड़े रहे हैं। हिन्दी में स्नातकोतर करने के बाद पूर्णतः लेखन-कार्य में रत रहे हैं।

इनकी हिन्दी-काव्य-सृजन यात्रा 1960 से आरम्भ होती है और वर्तमान में भी वे काव्य सृजन संलग्न हैं।

पहल, ऋचा, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, रविवार, साक्षात्कार नया प्रतीक, अन्तराल, दिनमान, और कादम्बिनी में उनकी विभिन्न कविताओं का प्रकाशन होता रहा है। नवगीतकार के रूप में उनकी पहचान सन् 1980 में प्रकाशित नवगीत संकलन ''लौट आएँगे सगुन पंछी'' से होती है। उसके बाद 'नवगीत दशक-2' में प्रकाशिथ नवगीतों से प्रतिनिधि नवगीतकार के रूप में उनकी विशिष्ट पहचान होती है।

अनुप 'अशेष' की रचनाओं में आत्मीयता पूर्ण पारिवारिक परिवेश मुखर हो उठा है। उनके गीतों में गाँव की सौंधी सुगन्ध के साथ वहां के अभावों को भी रेखांकित करते हैं। ग्राम्यजीवन की यथार्थ छवि उतारने में उनकी बोली भाषा की अभिज्ञत्रता ने सार्थक सहयोग दिया है। माहेश्वर तिवारी जी अनूप 'अशेष' के काव्य वैभव के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि - **''अनूप 'अशेष' नवगीत हिन्दी गीत कविता की सामर्थ्य और संभावना के आश्वस्तिदामक संकेत देते हैं। उनमें आम आदमी के बाहरी तथा भीतरी संघर्ष की विडम्बनापूर्ण स्थितियों के चित्र और प्रकृति की उल्लासपूर्ण छवियाँ एक साथ देखने को मिलती है। आत्मरुदन के बखान से मुक्त तथा बड़बोलेपन से बचकर निकल जाने की कुशलता इनके कथ्य को सहज और प्रामाणिक बनाती है।''**[174]

अनूप अशेष 'नवगीत' को नयी कविता की कीसी पूरक विधा के रूप में नहीं बल्कि आम आदमी की जिन्दगी से सभी मूल्यों व पक्षों के साथ अपनी अलग शक्ल में खड़ा हुआ मानते हैं। वे कहते हैं - **''यह गुस्सा और प्रतिशोधवाली वादग्रस्त कविता की तरह शोर पैदा कर खो नहीं गया। वह कण्ठ, राग के साथ बराबर आदमी से सम्पृक्त रहा है। पारम्परिक गीत और अगेय कविता, दोनों के बीच संवेदनशील कलात्मकता लिये यह पुल की तरह है। नवगीत चौकाकर अपनी बचत के लिए खेमें नहीं तकाशता रहा। अतीत, वर्तमान और भविष्य के तात्कालिक-सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच वह अपने तेवर और चमक के साथ उपस्थित रहता है।''**[175]

अनुप अशेष की मान्यता है कि, "**आज का नवगीत कविता की अन्य विधाओं से अधिक जहाँ ठहरने या स्वयं का दुहराने की स्थिति में पहुंचने लगती है, तो उसे लोक-पक्ष की ओर लोकगीतों की ओर देखना ही पड़ता है। आज की वादग्रस्त प्रतिबद्धता के छद्म आयतित मुहावरों वाली कविताओं के बीच नवगीत उसी लोक-गंध के साथ उपस्थित है।... यह आज की कविता में सर्वाधिक ग्राह्यसशक्त विधा है। युगीन परिवर्तित परिवेश ने गीतकारों की भाषा और शिल्प को प्रभावित किया और नयी भावभूमि दी। ... छठे दशक के बाद से नवगीत अपनी छान्दसिकता, बिंबात्मकता और शिल्पगत नवीनता में अधिक खुलकर सामने आया है।**"[176]

अनूप अशेष के गीतों में ग्राम्य जीवन, तथा ग्रामीण परिवेश का यर्थाथ चित्रण सहज ही देखने को मिलता है-

"ताल-तलैया लिए जीवन गंगा
धान सा पका किसान
गेहूँ-सा
कटा किसान ।"[177]

*** * ***

"दो खेपों में खपता उड़ता
जैसे खर-पतवार
पूरी बारिश
धूप ओढ़ कर
करे नौ-तपा पार
अगला साल आंख में भर कर
घर में
खटा किसान।
रस्सी गेरमा गूंज अभारी

अपना गोरख–धंधा
इस बीमार सदी के
मुँह को
जैसे बाँचे अंधा,
साहब संत्री की पेसी में
कद से
घटा किसान।
देनी कितनी चढ़ी हुयी है
नंगे सिर का बोझा
पत्नी बच्चे
खाट लिए हैं
गयन झाड़े ओझा,
खाद–बीज किहलत के खेमों
घुट–घुट
बँटा किसान।''[178]

सोम ठाकुर :

कवि सम्मेलनों में, अपने गांभीर्ययुक्त सुन्दर गीतों को, सुमधुर स्वर–लहरी से सजाकर, श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर आनन्द का समा बाँध देने वाले सोम ठाकुर बड़े लोकप्रिय हैं। आश्चर्य, इस बात का है कि अभी तक इनका कोई भी संग्रग प्रकाश में नहीं आया, किन्तु इससे उनके वैशिष्टयपूर्ण योगदान को नकारा नहीं गया, शंभुनाथ सिंहजी ने भी अपने प्रथम नवगीत संकलन में प्रमुख नवगीतकारों की श्रेणी में उन्हें स्थान दिया है जो अपने आप में बड़ी उपलब्धि है। पत्र–पत्रिकाओं में भी उनके नवगीत लगातार छपते रहते हैं, कवि सम्मेलनों के तो वे शीर्षस्थ गीतकार हैं ही। सोमठाकुर के गीतों में भी प्रणय एक मूलभाव के रूप में विद्यमान रहा है। उसमें भी वे विरह के गायक है। विरहातुर नैराश्य से छायी गीत पंक्तियॉ बड़ी ही सजीली, मार्मिक और प्रथकता की पहचान कराने वाली है –

"अब नहीं बंधेगे
वे बाँहो केसेतु कभी
केशों के केतु नहीं पहरेंगे
ध्वनियों में दौड़ते हुए वे रथ
पीपल की छाँव में नहीं ठहरेंगे।"[179]

वर्तमान जीवन की विषमताओं और विध्वसक यर्थाथ द्वारा स्वप्नों को पीसे जाने की वीरानी-कवि बड़ी ही लाक्षणिक भाषा में व्यक्त करता है। मन को सम्बोधित भावावेग, उपयुक्त शब्द-चयन निम्न गीत को सराहनीय बना देता है-

बाँधती है जो सुनहरी रोशनी के दो चरण
क्यों न पहुँचा उसी अँधियारे की जंजीर तक
खो गई हैं लाल मुस्कानें घृणा की भीड़ में
देख पत्थर पर रखे हैं डरे हिरनों के नयन
कसमसाती है किसी बहशी नशे की नींद
हर खुमारी हो गई है तोड़ को लाचार
रंज है जो रूप-गंधा झूमती अमराइयों पर
पड़ गई अंगार की बौछार
स्वप्न-गुच्छों की आँच पर आसव ढले
है सड़न में और कितनी देरे मेरे यक्ष-मन
तैरते है खुशबुओं के शव नदी की धार में
टूटते हैं स्वप्न हवा के संग
बन्द द्वारों की अकेली कैद में रहकर
खो गए हैं अनमने रांगोलियों के रंग।"[180]

एक जगह और वे अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते है-

"इतना ज्यादा मत हँसना मेरे मन

जो अनबरसा रह जाए सावन घन

यदि जीवन मुसकानों के हाथ बिका

आँसु का कौन करेगा अभिनन्दन।।''[181]

सोम ठाकुर नवगीत में पलायन की स्थिति को स्वीकार नहीं करते। उनके गीतों में आधुनिक युगबोध की सजगता और सांस्कृतिक संदर्भों की बहुलता, यथार्थ की तीखी तलवार बनकर चमकती है। नए युगकी विसंगतियों को उनकी वाणी का स्वर इस तरह मिला है-

''छोड़ दी स्वयं हमने सूरज की ऊँगलियां

आयातित अंधकार के पीछे दौड़कर

देकर अन्तिम प्रणाम धरती की गोद को

हम जिया करते केवल खाली आकाश पर

ठण्डे सैलाब में वही वसंत पीढ़ियाँ।''[182]

सोम ठाकुर जीवन की यथार्थ स्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन कर उसे गीतरूप प्रधान करते हैं। वे नवगीत में यथार्थ चित्रण को अनिवार्य मानते हुए नवगीत के विषय संसार का परिचय देते कहते हैं- **''नवगीत के विचार संसार का सवाहक माध्यम एंद्रिय संवेदन की परिसीमा के अन्तर्गत पंचभौतिक और अधिकांशतः चाक्षुश वस्तु ही है। आणविक बिखण्डन से लेकर नवांकुर के प्रकम्पन तक उसकी गहरी पहचान है।..... नवगीत की प्रकृति सोची हुई नहीं वरन यथार्थतः भोगी हुई है... नवगीत सामाजिक पलायन के विरुद्ध है। .... नवगीत का कथ्य हमारे देश की निजी कड़वी मीठी संवेदनशीलता का आसव है।''[183]**

उनका एक गीतांश प्रस्तुत है-

''फिर

मन आषाढ़ हो चला

तैरती रुई धुनी हुई

बूँद-बूँद गलकर हम भीड़ों में

बहते हैं हिमनदी सरीखे

हम खंडीत इंद्रधनुष उठाए
इस्पाती भाषा में चीखे
बादामी कानों तक आकर
सूनी बात अनसुनी हुई।''[184]

मधुर सपनों के टूटने पर यथार्थ के खुरदरे जगत से रुबरु मिलते आदमी की कातरता का सही चित्र सोमजी ने खींचा है -

''रेंग रेंग जाती है काँतर
फाइलों लदे हाथों पर
रहा सिर्फ इंतजार बस का
जल डूबे फूटपाथों पर।''[185]

ईश्वर ने 'भूख' के रूप में गरीबों का सबसे बड़ा शत्रु इस भूमि पर भेजा है जिसके चंगुल में वह जी भी नहीं सकता-

''पपड़ाए से होंठो पर जम कर रह गए
हरे आश्वासन
नीली बातें
दुपहर के हाथ लग गई भारी ऊब
धुनी याद और सुखी आँते
कुछ टूटे बिस्किट
अधफूला गुब्बारा
बाबा से लिपट गई छोटी नातिन।''[186]

विपरीत राहों के बन्धन आदमी को दिन व दिन कसते जा रहे हैं -

''बार-बार गूंज उठे
अन्ध कुएँ

छाने निर्वात

प्रहर सौ सो ने

काँपती लकीर

खिंची पन्नों पर

कसे और वक्ष

नागपाशों ने।''[187]

इस प्रकार सोमजी के नवगीत जीवन की दुख-सुखमयी यथार्थपरक स्थितियों से हमारा साक्षात्कार कराते हैं।

सोम ठाकुर कहते है - **''पीड़ा का यदि निर्वासन कर दिया जाए तो वाणी का आसन सूना हो जाएगा। करुणा का दर्पण न दिखाने पर भाषा सूनी हो जाएगी। आग भरी बिजली की तड़पन मेघों की जलधार बनती है। आज आदमी हार-हार कर बेसहारा हो गया है। आदमी की मौत नहीं बल्कि जिन्दगी ने मारा है। वह इस पार, उस पार, कभी धार तो कभी किनारा होता रहा। कामना की गोद में पलने से आदमी को ही आदमी गवारा न हो सका। घृणा के काफिले के संग चल, वह कभी धर्म, कभी निगाह, कभी गुनाह तो कभी वक्त के कारण टुकड़ों में बिखर गया।''[188]**

सोमठाकुर जी के गीतों का शिल्प पक्ष भी सशक्त है। उनकी भाषा भावों के अनुकुल है। बोलचाल व तत्सम दोनों तरह के शब्दों का प्रयोग किया है। बिम्बधर्मिता ने उनके गीतों को प्राणवान बना दिया है कुछ बिम्ब दृष्टवय है -

''माथे पर हाथ रखे बैठी है / तबियत होकर छुईमुई।''[189]

''तकिए पर टाँक कर गुलाबों से संस्मरण

रोशनी बिंधा बादल / कन्धे पर सो गया।''[190]

उन्होंने प्रकृति से रोजमर्रा की चीजों और पौराणिक पात्रों के रूप में सुन्दर प्रतीकों का निर्वाह किया है। देखिए -

''सुख सुबह / चम्पई दुपहीर मोरपंखिया शाम।''[191]

''दृष्टि के आकाश में बाँधे हुए चौदह भुवन

मेघदूतों को न टेर मेरे यक्ष मन।''[192]

''वेदना धराकी पहली बेटी थी

सीता जिसका मुँह बोला नाम था

वह चलता फिरता एक दर्द ही था

पूजा में उठकर जिसको राम कहा।''[193]

निश्चय ही सोमठाकुर प्रतिष्ठित गीतकार हैं।

विशेषरूप से सामयिक नवगीतधारा से जुड़े प्रतिनिधि हस्ताक्षरों प्रतिष्ठा के जुड़े ये नाम हैं -

'प्रो. देवेन्द्रशर्मा इन्द्र / प्रो. विद्यानन्दन राजीव / अनूप अशेष / विष्णु विराट / श्री कृष्ण शर्मा / नचिकेता / वीरेन्द्र आस्तिक / महेश अनध / कुमार रवीन्द्र / मधुकर अस्थाना / डॉ. ओमप्रकाशसिंह / निर्मल शुक्ल / यश मालवीय / मधुकर गौड़ / देवेन्द्र आर्य / शिव भजन सिंह कमलेश / योगेन्द्र दत्त शर्मा / हरीश निगम / राघवेन्द्र तिवारी / मधुसूदन साहा / राम सनेही लाल शर्मा / जंगबहादुर श्रीवास्तव / अशोक अंजुम / राजा अवस्थी / रमेश गौतम / सोम ठाकुर / किशन सरोज / ओम प्रकाश चतुर्वेदी / ऋषिवंशा विज्ञान व्रत / किशन तिवारी / अशोक गीते / केशव शरण / महेन्द्र नेह / दिनेश शुक्ल / जय चक्रवर्ती / हुकुमपाल सिंह / मयंक श्रीवास्तव / सैयद हिमान / मनोज जैन / रमेश खरे जौहर / ब्रजनाथ श्रीवास्तव / गोवर्धन यादव / भगवत दुबे / देवव्रत जोशी / महेश्वर तिवारी / नश्वर नागर आदि।'[194]

ये नाम वरिष्ठाक्रम से नहीं बल्कि परिगणना के क्रम से ही अंकित हैं। प्रेसमैन के शहरी संत्रास विशेषांक में प्रायः इन सभी रचनाकारों के कुछ नवगीत संग3हीत हैं। कुछ उदाहरण ध्यातव्य हैं -

नचिकेता : (पटना)

आने वाली नस्ल बाहर से क्या लेगी ?
खोलेगी जब मुक्त उड़ानों को पाँखें
सुलग उठेंगीं जली अँगीठी-सी आँखें।
हाथों में जल रही मशाल उठा लेगी।[195]

ओम प्रकाश चतुर्वेदी 'पराग' : (गाजियाबाद)

हम शहर में भटकते रहे हर कदम
याद आती रही जिंदगी गाँव की।[196]

विद्यानंदन राजीव : (शिवपुरी)

अब यह कोई शहर नहीं है
जंगल लगता है।
दौड़ रहे हैं लोग / सभी के होठों पर ताली /
धुआँ उगलते चौराहे हैं / भीड़भाड़ वाले /
दुर्घटना से सहमा-सहमा /
हर पल लगता है।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' : (साहिबाबाद)

आज भी निर्दोष कुछ मारे गए होंगे।
क्या हुआ जो दिन हमारा चैन से बीता।
रोशनी में या अँधेरे में।
आज भी गोली चली होगी।
फिर किसी घर में सुहागिन की
आज भी डोली जली होगी
बैंक या दुकान में / डाका पड़ा होगा
हुआ होगा शेष कोई / फिर कहीं खाली

अनूप अशेष : (सतना)

घर घर पीठ फिरे लगते हैं
लोग लोग अंजान
कितने गाँव एक बस्ती में
ढोये शहर थकान।

विष्णु विराट : (बड़ौदा)

हर गली घर काँपता है।
हर पता अब लापता है।
आ गए हम किन ठिकानों पर
बड़ा घबड़ा रहा मन।
नाम चेहरों से कटे हैं।
घूँमते धड़ सिर कटे हैं
रतजगे हिलते मकानों पर
बड़ा घबड़ा रहा मन

श्रीकृष्ण शर्मा : (छिन्दवाड़ा)

हम शहर के हैं
मगर हम
बन नहीं शहर के

वीरेन्द्र आस्तिक : (कानपुर)

ये मकान भी भटकाते हैं
टोपियाँ गिराकर सिर की
कद अपना दिखलाते हैं।

महेश अनघ : (ग्वालियर)

महानगर में एक पहर तक
हमने गाँव जिया
सुबह नीम का ब्रस लेकर
बत्तीसी चमकाई
लोटा लिया हाथ में / फिर लम्बी सी अगड़ाई
कॉफी के कम में भरकर दो पाउच छाछ पिया।

मधुकर अस्थाना : (लखनऊ)

मुट्ठीभर अस्थियाँ
किन्तु इच्छाएँ दुनियाँभर की
बुधिया है अनजान
संस्कृति कैसी महानगर की।

कृपाशंकर पाण्डेय : (कानपुर)

ऐसे घुटन भरे मौसम में
कैसे खुली हवा मिल पाए ?
जंगल की उद्दंड हवाएँ / नगरों को भी घेर चली हैं
तानाशाही सड़कों पर बर्बरता हर गली गली है।
चौराहे पर भूखी आँखें घूम रही टकटकी लगाए

मधुकर गौड़ : (मुम्बई)

प्रेम की चाँदिनी की छटा देखकर
सहज विश्वास मंडित घटा देखकर
रुक गए स्नेह की हम घनी छाँव में
आपके शहर में आपके गॉव में।

राधेश्याम शुक्ल : (हिसार)

अंधी गलियाँ / चुप चौराहे /
सूली चढ़े मुकाम
सारा शहर समर्पित जैसे -
है दहशत के नाम

कुमार रवीन्द्र : (हिसार)

क्या बतलाएँ
सबको सूरज मिला अधूरा
महानगर में
अपनी अपनी खोह सभी की
उसमें बैठे
लोग आरती करते खुद की
रहते ऐंठे
आधे हैं सब
कोई भी सम्बन्ध न पूरा
महानगर में

ओम प्रकाश सिंह : (रायबरेली)

फिर शहर की मार खाकर
लौट आए गाँव।
यह खुलापन/और फैला हुआ आकाश
यह हवा - पानी कहाँ है उस शहर के पास
ये घने वन और पोखर - दीप देहरी पर
याद आए शहर की जब
काँपते हैं पाँव

निर्मल शुक्ल : (लखनऊ)

सोच समझ लो
यह सीमा है / इसके आगे
दृष्टि जहाँ तक जाती है
सब महानगर है।

दिनेश प्रधान : (भोपाल)

मैं शहर की सभ्यता से तंग हूँ पर
गाँव भी तो अब नहीं चौपाल वाले।

जय चक्रवर्ती : (राय बरेली)

बेशर्मी से बोलकर
धरा और आकाश
महानगर है हँस रहा,
फैलाए भुजपाश।

योगेन्द्र दत्त शर्मा : (इलाहाबाद)

क्या दिया ऐसा शहन ने
जो हमारा मन लगा है अब
यहाँ ज्यादा ठहरने ?

राजेन्द्र गौतम : (दिल्ली)

गंदे कूड़ेदानों को भी
क्यों कहते हो
महानगर है।

यश मालवीय : (इलाहाबाद)

दृष्टि पत्थर हो गई है
दृश्य पत्थर हो गए हैं।
शहर के अंधे मगर फिर भी
धनुर्धर हो गए हैं।

सुधांशु उपाध्याय

हमने चाहा तो
पत्थर के घर हो गए
हम हैं जैसे हमारे शहर हो गए।

शिवभजन 'कमलेश' : (लखनऊ)

रहे घाट के और न घर के
ऐसे बछुआ बने शहर के
मन तो राजा हुआ मगर अब
बने वंशधर ज्यों अजगर के।

डॉ. हरीश निगम : (सतना)

एक चिड़िया बोलती है ठूँठ से
याद आई बाँसुरी टूटी हुई
छाँव पीपल की कहीं छूटी हुई
और हम पकड़े गए
फिर झूठ से

अनन्तराम मिश्र : (खीरी)

ऐसे संत्रास हैं मिले
जोड़ जोड़ टूट गए हम

मधुकर साहा : (राउरकेला)

यह अचानक
क्या हुआ है इस शहर को ?
हर गली में हवा है नारे लगाती
पत्तियों को नींद से हर पल जगाती
जी रहे सब साँस रोके
हर पहर को

गिरिधर गोपाल गट्टानी : (भोपाल)

काल की दृष्टि कहाँ ठहरी
हर शहर डूबा अँधेरे में
रश्मियों पर सूर्य की / बादल
कर रहे आतंक के साये
रोशनी के गीत कंठों में
रह गये / बाहर न आ पाए
बाँध कर रक्खा मनुजता को
स्वयं के संकीर्ण घेरे में

अनिरुद्ध नीरव : (अम्बिकापुर)

लोगों के कंधो पर / पशुओं के सिर हैं
ये कैसी बस्ती / ये कौन से बशर हैं

रमाकान्त : (रायबरेली)

दिक्कतों में है शहर
अब पत्थरों में है शहर

देवेन्द्र कुमार पाठक : (कटनी)

शहर के जंगल में
अंतस छटपटाता है।

डॉ. रमेश चन्द्र खरे : (दमोह)

कुंठा की ग्रंथि-ग्रंथि
मन का संत्रास
आधुनिक आभावों की कटुता का त्रास
सहे कोई कैसे सहे ? उलटी जलधार
बहे कोई कैसे बहे ?

राघवेन्द्र तिवारी : (भोपाल)

कहे ललितपुल वाली भाभी
देवरजी सुनना
तुम पटना या इलाहाबाद में
जो चाहे चुनना
दोनों की तागिर एक-सी
दुनियाँदारी भी
दोनों के किस्सों प्रसंगों में
है लाचारी भी

राम सनेही लाल शर्मा : (फिरोजाबाद)

महानगर - जंगल तक पहुँचे
नगरों में आ बैठा जंगल

शिव कुमार अर्चन : (भोपाल)

शहर मेरे गाँव चला आया
कालिख ले रंगों के ठाँव चला आया

दिवाकर वर्मा : (भोपाल)

गाँव का अब हो रहा है।
शहर में रूपांतरण

डॉ. यशोधरा राठौड़ : (मुजफ्फरपुर)

दीखते हैं इस शहर के लोग बोने
शहर के लोगों का कुछ परिचय नहीं है।

निर्मल चन्द्र निर्मल : (सागर)

शहरों की भाग दौड़ को
हम चले निभाने
सोचें क्या, कटिबद्ध रहें हम
युग संत्रास मिटाने ?

मयंक श्रीवास्तव : (भोपाल)

एसा हुआ विकास
सड़क की इतनी बड़ी तमीज
लुटकर लौट रही गोबर की लिपी हुई दहलीज
कच्ची माटी के फूटे घर / देते रोज बयान

जंग बहादुर श्रीवास्तव बंधु : (भोपाल)

स्पर्श नर्क में / नर्क स्वर्ग में
मिल कर बस्ती बने जहाँ
और बीच में वैतरनी की धार बहे वह महानगर

देवेन्द्र आर्य : (गाजियाबाद)

जो है उसको / नहीं भोगते
लेकिन कल की पडी हुई है
कहाँ-कहाँ भटके मन बोलो
कठिन समस्या खड़ी हुई है।

उपेन्द्र पाण्डेय (भोपाल)

जितना प्यार मिला है मुझको
गाँवों के उन गलियारों से
उतनी मन को पीर हुई है
शहरों की इन मीनारों से

जय चक्रवर्ती : (भोपाल)

चले शहर हम
ले रोटी - रोजी कर
राग पुराना।

यतीन्द्रनाथ राही (भोपाल)

पत्थरों का शहर है यह
काँच के घर हैं
कौन टूटे कौन फूटे
रात दिन डर हैं।

वीरेन्द्र आस्तिक (कानपुर)

ये मकान भी भटकाते हैं
टोपियाँ गिराकर सिर की
कद अपना दिखलाते हैं।

चन्द्रसेन 'विराट' : (इन्दौर)

एक मैं ही नहीं / और भी साथ हैं
ऊबकर हम तुम्हारे शहर से चले

जगदीश श्रीवास्तव : (विदिशा)

गाँव खाली हो गए हैं
शहर बनते जा रहे हैं
सीमेन्ट के जंगल

अशोक अंजुम : (अलीगढ़)

गुम्बदों के हैं घने साये
इक खुला आकाश दे दो रे।

शैलेन्द्र शर्मा : (कानपुर)

नई सभ्यता ने शहरों का
ऐसा किया विकास झेल रही है बूढ़ी पीढ़ी
रोज नये संत्रास

हुकुमपाल सिंह : (भोपाल)

महानगर की संस्कृति अपनी
भूली अपनापन
दुर्गन्धों से भरा हुआ है
पूरा चन्दनवन

विनोद श्रीवास्तव : (कानपुर)

मीत हमारे चलकर आये
गाँव खोजने शहरों में
इनकी कोशिश में शामिल हैं / धार सँजोना शिखरों में

श्लेष गौतम : (इलाहाबाद)

हँसी ठहाके मत ढूँढ़ो
यह कंक्रीट का मंगल है।
भीतर गहरी आग लगी है
बाहर लेकिन मंगल है।

यदि नवगीत के केन्द्रीय सोच को स्पर्श किया जाय तो आम आदमी का असंतोश, संत्रास, निराशा, गुख और आक्रोश सर्वत्र आभासित हुआ है। संवेदना के स्वर मुखर अवश्य हुए हैं किन्तु शहरी संत्रास का महमान सब पर हावी है।

अधिकतर नवगीतों में गाँव की ओर पुनर्प्रयाण और शहर से पलायन की बात सामने आई है। शहरी सुविधाओं और आर्थिक सहयोग की भूमिका राजनीतिक षड्यंत्रों में दबकर रह गई है।

दूसरा पक्ष संवेदना का है जिसमें विभाजित परिवारों की त्रासदी, संयुक्त परिवार का व्योमोह, पिता, माँ, बेटी के प्रति पुरावर्तित सोच का संस्पर्श सुखदाह लगता है।

पुरा गीतों में जहाँ एक ओर वैयक्तिक भाव ही संप्रेषित हुए हैं, वहाँ नवगीत आम-सोच से सम्यक्त है, अधिकांश में निम्न मध्यम वर्ग जो नौकरी पेशा जिन्दगी जी रहा है उसकी कुंठाएँ शीर्षस्थ रही है। व्यंग्य का स्वर सर्वत्र मुखर रहा है। आक्षेप और अभियोग के आरोपण भी सभी जगह तय किये हुए हैं।

आत्म मूल्यांकन की कसौटी कहीं नहीं है, व्यक्ति स्वयं की जर्जरित सोच को जैसे ढंक रहा है। वह खुद की व्यवस्था के क्षण में समानरूप से भागीदार होते हुए भी दूसरों के सिर पर पाप मढ रहा है1 'वोटों' की संकीर्ण मनोवृत्ति वह खुद भी पाप का भागी है, किन्तु आत्मवंचना का शिकार वह दूसरों पर ही आरोपण मढ़ता नजर आ रहा है।

समग्रतः नवगीतकारों ने आम आदमी की पैरवी करने का प्रदर्शन अवश्य किया है।

सन्दर्भ सूची

1. छायावादोत्तर प्रणीत - विनोद गोदरे, पृ 153
2. नीरज का काव्य एक विश्लेषण - डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र, पृ 89
3. नदी किनारे - नीरज, पृ 3
4. नदी किनारे - नीरज, पृ. 6
5. नदी किनारे - नीरज, पृ. 19
6. नदी किनारे - नीरज, पृ. 58
7. लहर पुकारे - नीरज, पृ 6
8. दर्द दिया है - नीरज, पृ. 104
9. दर्द दिया है - नीरज, पृ 4
10. दर्द दिया है - नीरज, पृ. 18
11. दर्द दिया है - नीरज, पृ. 37
12. वही
13. वही
14. वही
15. पाँच जोड़ बॉसुरी - केदारनाथ सिंह पृ. 208
16. पॉच जोड बॉसुरी - केदारनाथ सिंह पृ. 211
17. पाँच जोड बाँसुरी - केदारनाथ सिंह पृ. 212
18. पाँच जोड बॉसुरी - केदारनाथ सिंह पृ. 87
19. पाँच जोड़ बॉसुरी - केदारनाथ सिंह पृ. 88
20. तीसरा सप्तक - केदारनाथ सिंह पृ. 214
21. तीसरा सप्तक - केदारनाथ सिंह पृ. 215
22. तीसरा सप्तक - केदारनाथ सिंह पृ. 197
23. तीसरा सप्तक - केदारनाथ सिंह पृ. 202
24. यहाँ से देखो - केदारनाथ सिह पृ. 54, 55
25. जमीन पक रही है - केदारनाथ सिंह पृ. 45-46

26 अब बिल्कुल अभी - केदारनाथ सिंह पृ. 26

27. अब बिल्कुल अभी - केदारनाथ सिंह पृ. 16-17
28. अब बिल्कुल अभी - केदारनाथ सिंह पृ. 58

29 दर्द कैसे चुप रहे - चन्द्रसेन विराट, पृ 17-18

30. आधुनिक हिन्दी काव्य - डॉ. भागीरथ मिश्र, पृ. 592
31. नवगीत इतिहास और उपलब्धि - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. 135

32 भीतर की नाग - चन्द्रसेन विराट, पृ. 10

33. भीतर की नाग - चन्द्रसेन विराट, पृ. 15
34. भीतर की नाग - चन्द्रसेन विराट, पृ 22
35. भीतर की नागफनी - चन्द्रसेन विराट, पृ. 31
36. भीतर की नागफनी - चन्द्रसेन विराट, पृ 84

37. धर पर हम, पृ. 54
38. नवगीत इतिहास और उपलब्धि - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. 137
39. नवगीत इतिहास और उपलब्धि - डॉ. सुरेश गौतम, पृ 138
40 नवगीत इतिहास और उपलब्धि - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. 127
41. पुखैया के नुपूर - देवराज दिनेश पृ. 1
42. पुखैया के नुपूर - देवराज दिनेश पृ. 6
43. पुखैया के नुपूर - देवराज दिनेश पृ. 25
44. पुखैया के नुपूर - देवराज दिनेश पृ. 55
45. पुखैया के नुपूर - देवराज दिनेश पृ. 77
46. हिन्दी गीतिकाव्य - डॉ. रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, पृ. 468
47. जीवन और जवानी - देवराज दिनेश पृ. 116
48. गन्द और पराग - देवराज दिनेश, पृ. 90
49. गन्द और पराग - देवराज दिनेश, पृ. 96
50. पुखैया के नुपूर - देवराज दिनेश, पृ. 8
51. हिन्दी गीतिकाव्य - डॉ. रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी पृ. 470
52. गन्द और पराग - देवराज दिनेश, पृ. 34
53. शहर सहमा हुआ - शिवकुमार श्रीवास्तव पृ. 15-16
54 समय कागज पर - शिवकुमार श्रीवास्तव पृ. 4-5
55. शहर सहमा हुआ - शिवकुमार श्रीवास्तव पृ 23
56. शहर सहमा हुआ - शिवकुमार श्रीवास्तव पृ. 24
57. तुम ऋचा हो - शिवुकमार श्रीवास्तव, पृ. 92
58. तुम ऋचा हो - शिवुकमार श्रीवास्तव, पृ. 93
59. तुम ऋचा हो - शिवुकमार श्रीवास्तव, पृ. 58
60. तुम ऋचा हो - शिवुकमार श्रीवास्तव, पृ. 59
61. तुम ऋचा हो - शिवुकमार श्रीवास्तव, पृ. 43
62. तुम ऋचा हो - शिवुकमार श्रीवास्तव, पृ. 27
63. मेरा रूप तुम्हारा दर्पण - बालस्वरूप राही पृ. 7-8
64. मेरा रूप तुम्हारा दर्पण - बालस्वरूप राही पृ. 18-19
65. जो नितान्त मेरी है - बालस्वरूप राही पृ. 52
66. जो नितान्त मेरी है - बालस्वरूप राही पृ. 86
67. जो नितान्त मेरी है - बालस्वरूप राही पृ 88
68. नवगीत इतिहास और उपलब्धि - डॉ. सुरेश गौतम पृ. 108
69. सपने महक उठे - बालस्वरूप राही पृ. 52
70. सपने महक उठे - रामअवतार त्यागी पृ. 3-4
71. सपने महक उठे - रामअवतार त्यागी पृ. 17
72. सपने महक उठे - रामअवतार त्यागी पृ. 5
73. सपने महक उठे - रामअवतार त्यागी पृ. 10
74. गाता हुआ दर्द - रामावतार त्यागी पृ. 11

75. गाता हुआ दर्द - रामावतार त्यागी पृ. 15
76. गाता हुआ दर्द - रामावतार त्यागी पृ 16
77. गाता हुआ दर्द - रामावतार त्यागी पृ. 105
78. वही
79. नवगीतदशक -भाग-1 सोमठाकुर पृ.
80. नवगीतदशक -भाग-1 सोमठाकुर पृ
81. नवगीतदशक -भाग-3 सोमठाकुर पृ.
82. नवगीतदशक -भाग-1 देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृ.
83. नवगीतदशक -भाग-1 देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृ.
84. अविराम चलमधुवन्ती- वीरेन्द्र मिश्र, पृ.
85. अविराम चलमधुवन्ती- वीरेन्द्र मिश्र, पृ.
86. अविराम चलमधुवन्ती- वीरेन्द्र मिश्र, पृ.
87. नवगीत इतिहास और उपलब्धि- डॉ. सुरेश गौतम पृ 74
88. गीतम - वीरेन्द्र मिश्र पृ.
89. गीतम - वीरेन्द्र मिश्र पृ.
90. गीतम - वीरेन्द्र मिश्र पृ. 11
91 गीतम - वीरेन्द्र मिश्र पृ. 12
92. गीतम - वीरेन्द्र मिश्र पृ. 18
93. अविराम चल- वीरेन्द्र मिश्र पृ. 85
94. लेखनी बेला मधुवन्ती - वीरेन्द्र मिश्र पृ. 125
95. अविराम चल मधुवंती- वीरेन्द्र मिश्र पृ.
96. नवगीत दशक-2 - उमाशंकर तिवारी पृ. 69
97 नवगीत दशक-2 - उमाशंकर तिवारी पृ 70
98. जलते शहेर में - उमाशंकर तिवारी पृ. 9
99. जलते शहेर में - उमाशंकर तिवारी पृ. 2, 8, 70
100. नवगीत दशक-2 - उमाशंकर तिवारी पृ. 118
101. नवगीत दशक-2 - उमाशंकर तिवारी पृ. 125
102. नवगीत दशक-2 - उमाशंकर तिवारी पृ. 130
103. नवगीत दशक-2 - उमाशंकर तिवारी पृ. 132
104. भव्य भारती - नवगीत शिखर, सं. विष्णु विराट
105. वही
106 पाँच जोड बांसुरी - राजेन्द्र गौतम
107. पाँच जोड़ बांसुरी - राजेन्द्र गौतम पृ.
108 पाँच जोड बांसुरी - ओम प्रभाकर
109 तुम ऋचा हो - शिवकुमार श्रीवास्तव, पृ.
110 तुम ऋचा हो - शिवकुमार श्रीवास्तव, पृ.
111 तुम ऋचा हो - सुधांशु उपाध्याय, पृ.
112 तुम ऋचा हो - सुधांशु उपाध्याय, पृ.

113 तुम ऋचा हो - सुधांशु उपाध्याय, पृ.
114 तुम ऋचा हो - गुलाबसिंह पृ.
115 तुम ऋचा हो - गुलाबसिंह पृ
116 तुम ऋचा हो - गुलाबसिंह पृ.
117 वही
118 वही
119 वही
120 वही
121. तुम ऋचा हो - कुमार रवीन्द्र पृ.
122. तुम ऋचा हो - कुमार रवीन्द्र पृ.
123 तुम ऋचा हो - कुमार रवीन्द्र पृ.
124 तुम ऋचा हो - कुमार रवीन्द्र पृ
125 आहत है वन- कुमार रवीन्द्र पृ. 9
126 आहत है वन- कुमार रवीन्द्र पृ. 22
127 आहत है वन- कुमार रवीन्द्र पृ. 34
128 आहत है वन- कुमार रवीन्द्र पृ. 36
129 आहत है वन- कुमार रवीन्द्र पृ. 12
130 आहत है वन- कुमार रवीन्द्र पृ. 30
131 आहत है वन- कुमार रवीन्द्र पृ. 26
132 आहत है वन- कुमार रवीन्द्र पृ. 44
133 नवगीत दएक भाग-2, कुमार रवीन्द्र पृ. 81
134 नवगीत दएक भाग-2, कुमार रवीन्द्र पृ. 84
135 नवगीत दशक-2, कुमार शिव पृ.
136 नवगीत दशक-2, कुमार शिव पृ.
137 नवगीत दशक-2, कुमार शिव पृ.
138 नवगीत दशक-2, दिनेश सिंह पृ.
139 नवगीत दशक-2, दिनेश सिंह पृ.
140 नवगीत दशक-2, दिनेश सिंह पृ.
141 नवगीत दशक-2, दिनेश सिंह पृ.
142 नवगीत इतिहास और उपलब्धि- डॉ सुरेश गौतम पृ. 127
143 सोम मछरी मन बसी - रवीन्द्र भ्रमर पृ. 52
144 सोम मछरी मन बसी - रवीन्द्र भ्रमर पृ. 53
145 रवीन्द्र भ्रमर के गीत -रवीन्द्र भ्रमर पृ. 13
146 रवीन्द्र भ्रमर के गीत -रवीन्द्र भ्रमर पृ. 13
147 रवीन्द्र भ्रमर के गीत -रवीन्द्र भ्रमर पृ. 32
148 रवीन्द्र भ्रमर के गीत -रवीन्द्र भ्रमर पृ. 37
149 रवीन्द्र भ्रमर के गीत -रवीन्द्र भ्रमर पृ. 55
150 हिन्दी गीतिकाल - डॉ. रामेश्वर प्रसाद तिवारी पृ. 499-500

151 रवीन्द्र भ्रमर के गीत - रवीन्द्र भ्रमर - पृ. 81
152. धार पर हम - रवीन्द्र भ्रमर पृ. 43
153 भव्य भारती नवगीत एिकर - रवीन्द्र भ्रमर पृ. 25
154 भव्य भारती नवगीत एिकर - रवीन्द्र भ्रमर पृ. 25
155 भव्य भारती नवगीत एिकर - रवीन्द्र भ्रमर पृ. 25
156 भव्य भारती नवगीत एिकर - रवीन्द्र भ्रमर पृ. 25
157 भव्य भारती नवगीत एिकर - रवीन्द्र भ्रमर पृ. 25
158 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 22
159 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 52
160 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ 58
161 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 60
162 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 65
163 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 66
164 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 84
165 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ 39
166 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 46
167 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 50
168 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 55
169 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 57
170 रवीन्द्र भ्रमर के गीत- रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 59
171 ऋतुचक्रः गीत पर्व आया है की आलोचना- पद्युम्न कुमार पृ. 50
172. नवगीत दशक भाग-3, राजेन्द्र गौतम पृ. 20
173 नवगीत दशक भाग-3, राजेन्द्र गौतम पृ. 34
174 नवगीत दशक भाग-3, राजेन्द्र गौतम पृ. 31
175 हिन्दी नवगीत उद्भव और विकास - राजेन्द्र गौतम पृ. 119
176 गीत पर्व आया है- राजेन्द्र गौतम पृ. 26
177 गीत पर्व आया है- राजेन्द्र गौतम पृ. 51
178. गीत पर्व आया है- राजेन्द्र गौतम पृ. 87
179. गीत पर्व आया है- राजेन्द्र गौतम पृ. 55
180. गीत पर्व आया है- राजेन्द्र गौतम पृ. 70
181. गीत पर्व आया है- राजेन्द्र गौतम पृ. 78
182. लौट आए सगुन पंछी- अनूप अशेष पृ.
183. नवगीत दशक भाग-2, अनूप अशेष, पृ. 33
184 नवगीत दशक भाग-2, अनूप अशेष, पृ. 34
185. नवगीत दशक भाग-2, अनूप अशेष, पृ. 35
186. नवगीत दशक भाग-2, अनूप अशेष, पृ. 50
187. धर्मयुग : नवम्बर : 1996- सोमठाकुर पृ. 23
188. साप्ताहिक हिन्दुस्तान सितम्बर 1994 सोमठाकुर पृ. 24

189. साप्ताहिक हिन्दुस्तान सितम्बर 1994 सोमठाकुर पृ. 35
190. नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 40
191. नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 29-30
192. नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 33
193. नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ 34
194 नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 34
195. नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 36
196. नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 37
197. नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 33
198. नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 35
199 नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 35
200 नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ. 9
201. नवगीत दशक भाग-1, सोमठाकुर पृ 10
202 द्रष्टव्य - प्रेसमैन साप्ताहिक - 10 नवम्बर 2008 अंक मे पृ. 6
203 वही
204 वही